योगदा सत्संग

(सेल्फ-रियलाइज़ेशन)

शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वस्थता हेतु समर्पित पत्रिका

150TH AVIRBHAV ANNIVERSARY OF JNANAVATAR SRI SRI SWAMI SRI YUKTESWAR GIRI

Yogoda Satsanga Society of India
FOUNDED 1917
Paramahansa Yogananda

II/05

श्री श्री दया माता जी का पत्र

मेरे प्रियजनों,

मैंने आपसे कहा था कि मैं स्वामी श्रीयुक्तेश्वर जी के सम्बन्ध में हुए अपने अन्य अनुभवों के विषय में सोचने का प्रयास करूँगी, तो उनमें से एक यह है, जो मैं आपको सुनाती हूँ:

कई, कई, वर्ष पूर्व जब गुरुजी द्वारा मुझे अपने जीवन को सन्यासी के रूप में व्यतीत करने की अनुमति प्राप्त हुई और मैं पहली बार माउन्ट वाशिंगटन आई तो उन्होंने मुझसे कहा "तुम्हें पता है जब मैं प्रथम बार — सन्यासी के रूप में अपने गुरु के पास गया था तो उन्होंने मुझसे कहाः अगर तुम मेरे पास आए हो तो तुम्हें अब उचित आचरण करना सीखना होगा" और मैं तुमसे भी यही माँगता हूँ कि अगर तुम अपना जीवन प्रभु की सेवा में समर्पित करने की इच्छा से मेरे पास आई हो तो सबसे पहले तुम्हें सही आचरण करना सीखना होगा।" उस समय इसका अर्थ मेरी समझ में नहीं आया था, पर जैसे-जैसे समय बीतता गया मैंने देखा, कि मुझे भी वहीं सख्त अनुशासन प्राप्त हुआ जो गुरुजी को उनके गुरु से मिला था। गुरुजी के जीवन के अंतिम दिन जब मैं माउन्ट वाशिंगटन के ऊपरी तल्ले से नीचे प्रवेश द्वार की ओर जा रही थी जहाँ गुरुजी की गाड़ी खड़ी थी, उन्होंने मुझसे कहाः तुम्हें पता है, मैंने तुम्हें वहीं कठोर अनुशासन दिया है जैसा कि मेरे गुरु ने मुझे दिया था, और मैं आज जैसा हूँ उसके फलस्वरूप ही हूँ।" और उन्होंने कहा, "तुम भी बिलकुल ऐसा ही करना।" मैंने कभी उन बातों को नहीं भुलाया और आज भी अपने दैनिक जीवन में अनेकों बार उनका स्मरण करती हूँ।

उन्होंने हमें सिखाया कि कक्ष में विश्राम के लिये जाने से पूर्व हम आत्मनिरीक्षण करें और ध्यान में शान्तपूर्वक बैठें। अपने आप से यह कहना अच्छा होता है कि "प्रभु मैं यहाँ तुम्हारे सामने हूँ। मैं अपने अच्छे और बुरे आचरणों सह्य घिरा हुआ हूँ। मैंने आज क्या-क्या किया?" और तब अपना विश्लेषण करके, हम अपने उस दिन के कर्मों और विचारों में दोषों का पता लगा लेते हैं। मेरे लिए ऐसा करना एक वरदान की तरह है और मैं आप सभी को ऐसा करने के लिये कहूँगी। अपने आप में परिवर्तन लाने का एक ही रास्ता है और वह है अपना आत्मनिरीक्षण करना सीखकर और अपनी अन्तरात्मा के प्रति ईमानदार रह कर, न कि अपने अहंकार के प्रति रह कर। मैंने आज क्या किया? क्या मैं दयालु थी? क्या मैं प्रेममयी थी? क्या मेरा व्यवहार मैत्रीपूर्ण था? क्या मेरा व्यवहार समझदारी वाला था? क्या मैं निःस्वार्थ थी? क्या मैंने ईश्वर से प्रेम किया? इस प्रकार के आत्मविश्लेषण से मैंने सर्वाधिक लाभ प्राप्त किया है।

गुरुदेव के दिव्य गुरु स्वामी श्रीयुक्तेश्वरजी, जो हमारे परमप्रिय परमगुरु हैं, गुरुजी के सभी शिष्यों के लिये एक महान प्रेरणा स्रोत थे। मैं आप से अनुरोध करती हूँ कि उनके बारे में जो कुछ भी पढ़ने को मिले उसे पढ़ कर उनको और अच्छे से जानिये। और जब भी सम्भव हो पुरी के पावन मन्दिर के दर्शन करने का, तो उसके दर्शन अवश्य करियेगा, जिसे गुरुदेव ने अमरीकी शिष्यों की दी गई दानराशी से बनवाया था। इस मन्दिर के डिजाइन को गुरुदेव ने बनाया था, और मेरे पास उसके प्रारंभिक रेखा-चित्र भी हैं जिन्हें गुरुजी ने कागज पर कच्चा बनाया था, जिससे पता चलता है कि स्वामी श्रीयुक्तेश्वरजी के लिये वो कैसा मन्दिर बनवाना चाहते थे। पुरी के इस गुरु-मन्दिर को अपने जीवन के अंतिम चरण में गुरुदेव के छोटे भाई ने बनवाया। और मैं यह आशा करती हूँ कि आप लोग इसको बार-बार देखने जायेंगे। मुझे यह सोचकर दुःख होता है कि आज यह मंदिर हमारी देख-रेख में नहीं है जैसा कि गुरुजी के जीवन काल में था। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि किसी दिन यह मंदिर गुरुदेव की संस्था वाई. एस. एस. के अन्तर्गत आ जाये।

भगवद्गीता के १६वें अध्याय श्लोक १ से ३ में भगवान कृष्ण ने मनुष्य के उन गुणों का वर्णन किया है जिसका पालन करने से मनुष्य ईश्वर के समान हो जाता है। मैं आप सब से उसे पढ़ने का अनुरोध करती हूँ जिससे आप उसे अपने हृदय में अनुभव करके अपने दैनिक जीवन में उनपर अमल कर सकें।

ईश्वर प्रेम एवं आशीर्वाद

Daya Mata

श्री श्री दया माता

योगदा सत्संग

(सेल्फ़-रियलाइज़ेशन)
II/2005

श्री श्री परमहंस योगानन्द द्वारा संस्थापित
शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वस्थता
हेतु समर्पित

(उचित भोजन, सही जीवन-यापन और ईश्वर की सर्वशक्तिमान दिव्य ऊर्जा द्वारा शरीर को पुनः शक्ति प्रदान कर शारीरिक रोग का निवारण करना; एकाग्रता, रचनात्मक विचार एवं प्रसन्नता द्वारा मन से असंतुलन और अयोग्यता को दूर करना; और ध्यान द्वारा सदा-सम्पूर्ण आत्मा को आध्यात्मिक अज्ञान के बंधनों से मुक्त करना)

4

अन्दर का आवरण पृष्ठ फ़ोटो : श्री श्री स्वामी श्रीयुक्तेश्वर गिरि जी एवं श्री श्री परमहंस योगानन्द जी, कोलकाता, १९३५

अंतर्पार्श्व आवरण पृष्ठ : श्री आनन्द माता, श्री श्री दया माता, मालाबार हिल, मुम्बई, १९७३

पार्श्व आवरण पृष्ठ : श्री श्री स्वामी श्रीयुक्तेश्वर गिरि जी का स्मृति मन्दिर, श्रीरामपुर
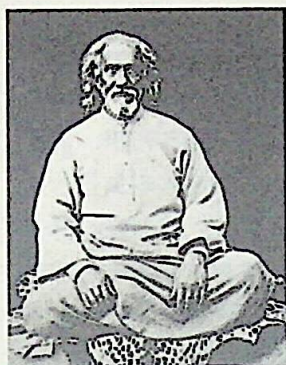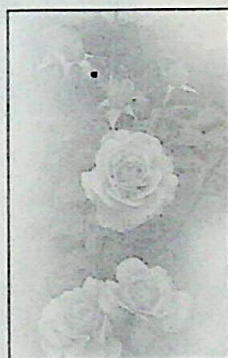
योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया/सेल्फ-रियलाइज़ेशन फेलोशिप का अधिकृत प्रकाशन

योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया
योगदा सत्संग मठ
21, यू० एन० मुखर्जी रोड, दक्षिणेश्वर, कोलकाता-700 076, पश्चिम बंगाल द्वारा भारत में मुद्रित और प्रकाशित

वर्ष में चार बार प्रकाशित; 12.50 रु. एक पुस्तिका के; 50.00 रु. एक वर्ष के (4 पुस्तिकाएँ); 135.00 रु. तीन वर्ष के (12 पुस्तिकाएँ)।

पत्राचार : योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया. परमहंस योगानन्द पथ, राँची 834001, झारखण्ड, इन्डिया, फोन (0651) 2460071, 2460074

अपने पूरे प्रयत्न से समझ की प्राप्ति करें

श्री श्री परमहंस योगानन्द द्वारा

सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ैलोशिप अंतर्राष्ट्रीय मुख्यालय लॉस एंजेलिस, कैलिफ़ोर्निया, फरवरी 23, 1939

समझ प्रत्येक आत्मा की सबसे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति होती है। यह आपकी अंतर्दृष्टि या सहजबुद्धि है जिसके द्वारा आप अपने या अन्य लोगों के भीतर तथा समस्त परिस्थितियों में निहित सत्य को देख सकते हैं, तथा अपने रवैये और कार्यकलापों को यथावश्यकता सुधार सकते हैं। यह इसकी एक बड़ी परिभाषा है।

इस संसार में हमारी समझ की दृष्टि प्रायः बड़ी सीमित रहती है। जब हमारी मानसिक दृष्टि इस प्रकार मंद हो जाती है तो भविष्य में देख पाना असम्भव हो जाता है, कि आगे क्या होने वाला है। अपने कर्मों के भावी परिणाम से अंधे होने के कारण, हम अधिकांश गलत कर्म ही कर बैठते हैं। इस संसार में सफल जीवन बिताने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने चारों ओर के परिवेश को ठीक से समझें और यह भी देख सकें कि दूर भविष्य में आप किस दिशा की ओर अग्रसर हैं । हमारे अंदर ऐसी सूक्ष्म और सहज अंतदृष्टि होनी चाहिए जिससे आप यह बता सकें कि अब से दो या दस वर्ष के उपरान्त आपका जीवन कैसा होगा।

यदि आपको निकट दृष्टि का दोष है तो आप केवल अपने पास की वस्तुओं को ही ठीक से देख पाते हैं। और यदि आपको दूर दृष्टि का दोष है तो आप केवल दूर की वस्तुओं को ही ठीक से देख पाते हैं किन्तु पास की वस्तुओं को नहीं। किन्तु आपकी दृष्टि में चाहे कोई भी दोष हो, उसका उपचार है उचित चश्मा लगाना, अन्यथा आपको सबकुछ धुंधला दिखाई देगा। इसी प्रकार यदि आपकी समझ निकट या दूरदर्शी है तो समय आ गया है कि अब आप एकाग्रता का मानसिक चश्मा पहन लें — मन को एकाग्र करने की वह योग्यता जिससे समझ स्पष्ट, साफ और अचूक हो जाती है। इस प्रकार एकाग्रता से समझ का विकास होता है। इसके विपरीत अस्थिरता — वह जो मन को अशान्त और चंचल बनाती है — दृष्टि को धुंधला करती है और भ्रांति उत्पन्न करती है। भावुकता दृष्टि को धुंधला बनाती है। अधिकांश व्यक्ति समझ से नहीं बल्कि अपनी भावनाओं के अनुसार कार्य करते हैं। पूर्वाग्रह भी दृष्टि को धुँधला बनाती हैं: यह पूर्व निश्चित धारणाएँ आपकी समझ को विकृत करती हैं, और स्पष्ट देखने में बाधा उत्पन्न करती हैं। भारत में, महान पुरुषों के साथ मेरे अनुभव में, सर्वप्रथम मैंने अपनी मानसिक दृष्टि से सभी प्रकार की चंचलता एवं मानसिक पूर्वाग्रह को दूर किया जो कि मेरी समझ को धुँधला बना सकती थीं।

प्रायः देखा जाता है कि लोग बचपन से ही अपने परिवेश तथा परिस्थितियों से उत्पन्न हुए पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हो जाते हैं। इसके कारण समझ कुंठित हो जाती है और परिस्थितियों को ठीक से समझ पाना कठिन हो जाता है। तुम को उन पूर्वाग्रहों का विश्लेषण करना चाहिए जो तुम्हारी समझ के ऊपर असर डालती हैं। जब भी कोई निर्णय लेने लगो तो अपने आप से पुछो कि वह निर्णय क्या तुम सोचसमझ कर ले रहे हो अथवा भावनाओं में बहकर या फिर मन पर किसी पूर्वाग्रह के प्रभाव से। जब तक तुम क्रोध अथवा लालच से ग्रस्त रहोगे; जब तक दूसरों की गलत विचारधारा से प्रभावित होते रहोगे; जब तक दूसरों की भ्रान्ति से प्रभावित होते रहोगे तब तक तुम्हारी समझ साफ नहीं रहेगी।

ईश्वर का ज्ञान रखने वाले किसी आध्यात्मिक सद्‌गुरु की सहायता लो

पूर्वाग्रहों, विभिन्न प्रकार की मनःस्थितियों तथा भावनाओं के कारण व्यक्ति स्वयं अपने ही मन को ठीक से नहीं देख पाता जैसा की वास्तव में वह है। इसलिए इसी में बुद्धिमानी है कि किसी सद्‌गुरु या उनकी शिक्षाओं से अपने विचारों का विश्लेषण करके उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें। जिन लोगों का ईश्वर से एकाकार है वास्तविक समझ उन्हीं को होती है। जो लोग सच्चे ज्ञानी हैं वे सभी, दिव्य ज्ञान से अपनी बुद्धि को शुद्ध करके ज्ञानी बने हैं। उनके सत्संग से ही तुम्हें भी ज्ञान प्राप्त होगा। मैं अपने गुरुदेव, स्वामी श्रीयुक्तेश्वरजी का सम्मान केवल इसलिये नहीं करता कि वे मेरे आध्यात्मिक गुरु थे, बल्कि इसलिए क्योंकि उन्होंने मुझे, वह, अच्छी समझ दी। मेरे मन की जो भी स्पष्टता है वह उन्हीं की देन है, मेरे परिवार अथवा किसी अन्य की नहीं। जितना प्रेम मुझे अपने माता-पिता से था उतना प्रेम शायद ही किसी और को अपने माता पिता से होगा, किन्तु मेरे गुरु ने जो स्पष्टता मेरे विचारों को प्रदान की उसके कारण मैं सत्य के मार्ग पर अडिग हो गया।

मुझे याद है जब मैं संसार को त्याग कर बनारस गया था; मैं वह प्राप्त करना चाहता था जिसे धन देकर नहीं खरीदा जा सकता। मैंने धनवान लोगों के जीवन का विश्लेषण करके देखा किन्तु मैं उनके समान जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता था। मुझे पता था कि यदि मैं उनके समान रहने का प्रयास करूँगा तो पछताऊँगा।

मुझे लगता था कि दूसरो के पास कुछ ऐसी वस्तुएँ थीं जिन्हें मैं भी शायद पाना चाहता, इसलिए मैंने यह सोचा कि अगर मैं भी उन्हीं लोगों के रास्ते पर चलूँ तो क्या होगा। मैंने पाया कि उनके रास्ते पर चलकर मैं कभी भी प्रसन्न नहीं रह पाता।

जब मैं बनारस में था तो ईश्वर ने मुझे मेरे गरु के पास पहुँचा दिया। बाद में एक दिन उनके आश्रम में मैंने उनसे कहा, "मुझे घर बुलाया गया है इसलिए मुझे अपने पिता से मिलने जाना होगा। वे मुझसे बहुत प्रेम करते हैं।"

गुरुदेव जानते थे कि मेरे परिवार वाले मुझे अपने पास रोक लेना चाहेंगे। उन्होंने कहा, "अच्छा होगा कि तुम न जाओ, सम्भव है तुम वापस न आ पाओ।"

किन्तु मैंने कहा, "गुरुजी मैं वादा करता हूँ कि मैं लौट आऊँगा।" क्योंकि मैं जानता था कि मेरे लिये इसके अलावा और कोई जीवन ही नहीं है। माता पिता के प्रति प्रेम और मोह अलग अलग चीजें हैं। मोह बुद्धि पर परदा डाल देती है जबकि दिव्यप्रेम कभी अंधा नहीं होता। मैं जानता हूँ कि मैं अपने माता पिता से जितना प्रेम करता हूँ उससे अधिक प्रेम उन्हें परिवार में कोई और नहीं करता है और यह कि ईश्वर को अपना जीवन अर्पण करके मैंने उनके लिए उससे कही अधिक कर दिया जो मैं किसी भी अन्य प्रकार से नहीं कर पाता।

जब मैं घर पहुँचा, मेरे पिता, जो इतनी आसानी से भावुक* नहीं होते हैं, मुझे देख कर इतने खुश हो गए कि उनकी आँखों में आँसू आ गए। वे बोले, "मुझे प्रसन्नता है कि तुम वापस आ गए हो।" उन कुछ शब्दों में ही बहुत से भाव निहित थे। उनका स्नेह इतना गहरा था कि वे उसे प्रकट नहीं करना चाहते थे। जैसा कि एक महान संत ने कहा है, "जब भी प्रेम को बोलकर व्यक्त करते हैं, तो उस पवित्र भावना का कुछ अंश हृदय से निकल कर मुँह की अशुद्धि से मिल जाता है; मुख के कीटाणु तथा होठों की अशुद्धि उसे खराब कर देती है।" ईश्वर तुमसे किसी से भी अधिक प्रेम करते हैं। मगर इसीलिए वह आपको कभी कहते नहीं। वह अपना प्रेम मौन रह कर व्यक्त करते हैं। जैसे-जैसे मैं आध्यात्मिक पथ पर बढ़ता गया, इतना प्रेम मुझे ईश्वर से मिला जितना कि कोई भी मनुष्य कभी नहीं दे सकता था।

मगर अब अपनी कहानी पर वापस आते हैं: जब मैं अपने पिता के पास खड़ा था तो वह बोले कि मैं घर आकर उनके दिवंगत बड़े पुत्र का

---

* परमहंसजी के पिता इस प्रवचन के समय तक जीवित थे। उनका स्वर्गवास तीन वर्ष उपरान्त हुआ।

स्थान ग्रहण कर लूँ जिनका स्वर्गवास हो चुका था।* मेरे पिता बोले, "यदि मेरी मृत्यु हो जाए तो तुम्हारे छोटे भाई बहनो की देखभाल कौन करेगा?"

मैंने उत्तर दिया, "पिताजी मैं आपको इस संसार में किसी से भी ज्यादा प्रेम करता हूँ; किन्तु ईश्वर को अधिक प्रेम करता हूँ। उन्होंने ही मुझे आप जैसे पिता दिये हैं।"

मैं उस परमात्मा को कैसे छोड़ सकता हूँ जिसने मुझे इतना प्रेम देने वाले माता-पिता दिए? यदि परमपिता ने मेरे पिता के हृदय में इतना प्रेम न दिया होता तो वे मुझे कैसे प्रेम कर सकते थे? ईश्वर के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने से, अपने आप ही, सबके प्रति आपका कर्त्तव्य पूर्ण हो जाता है, क्योंकि बिना उनके, हमारा कोई भी प्रियजन न होता। यहीं सच्चा ज्ञान है।

उसके बाद मेरे पिता और कुछ न कह पाए। वे समझ चुके थे। और जब मैं यह गाता हुआ जाने लगा कि, "मैं अब माया की नदी को पार कर रहा हूँ अब पीछे नहीं मुडुँगा ताकि कहीं कमजोर न पड़ जाऊँ" तो घर के सभी लोग रो रहे थे। सांसारिक दृष्टि से उन्हें छोड़कर जाना बहुत क्रूर कृत्य था किन्तु इस त्याग के कारण मुझपर तथा उनपर ईश्वर की अत्यधिक कृपा हुई। ईश्वर को सर्वप्रथम रखकर उनकी सेवा करके मैं आध्यात्मिक रूप से, अपने परिवार के लिये कहीं अधिक कर सका, जो कि किसी भी भौतिक सहायता से मैं कभी न कर पाता।

कुछ वर्षों के बाद जब मैं ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके लौटा, तो अपने साथ पिताजी को अपनी राँची की लड़कों की पाठशाला को दिखाने के लिए ले गया तब वह बोले, "मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ।"

"नहीं, नहीं", मैंने प्रतिरोध में कहा, "मैं आपके योग्य नहीं हूँ।"

इसपर वह बोले, "मुझे अब प्रसन्नता है कि तुमने मेरी बताई रेलवे की नौकरी स्वीकार नहीं की।"

दिव्य समझ के बिना जीवन आध्यात्मिक तथा भौतिक आत्महत्या के समान है

धन्य हैं वो जिनको समझ है। आध्यात्म तथा जीवन के पथ पर उसकी बहुत आवश्यकता है। समझ ऐसी सर्चलाइट है जो आपके मार्ग को प्रकाशमान करती है तथा सफलता दिलाती है। जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त

* परमहंसजी के सन्यास परम्परा में स्वामी बनने के कुछ ही समय बाद अनन्त लाल घोष का स्वर्गवास १९१८ में हुआ।

करने से पहले तुम्हारे भीतर इस गुण का होना आवश्यक है। इसलिए कभी अन्धे न बनो और न ही भ्रान्ति में रहो। यह आध्यात्मिक तथा भौतिक आत्महत्या है।

हर एक परिस्थिति में समझ से काम लो। चाहे कोई भी परीक्षा तुम्हारे सामने आए उसे समझने का प्रयास करो। ईश्वर कभी किसी को हानि अथवा कष्ट नहीं पहुँचाते। स्वयं हम ही अपनी समझ या नासमझी के कारण अपनी सहायता करते हैं या अपने रास्ते में बाधा डालते हैं। ईश्वर से यह प्रार्थना करो कि चाहे तुम्हारे सामने कोई भी अनुभव आएँ, वह तुम्हें सद्बुद्धि दें। केवल वही तुम्हारी रक्षा कर सकती है। जब मेरी परीक्षाएँ बहुत महान रूप धारण कर लेती हैं, तो मैं सर्वप्रथम अपने भीतर समझ को खोजता हूँ। मैं न तो परिस्थितियों को दोष देने का प्रयास करता हूँ और न ही दूसरों की गलतियाँ सुधारने का प्रयास करता हूँ। मैं सबसे पहले अपने अंतर्मन में जाता हूँ। मैं अपनी आत्मा के भवन को साफ करता हूँ जिससे आत्मा की सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ समझ के रास्ते में आने वाली रुकावटों को दूर कर सकूँ। सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने का यही ढंग है।

लोगों को लगता है कि समस्या से मुँह मोड़ लेना सबसे सरल उपाय है। किन्तु सच तो यह है कि अपने से अधिक शक्तिशाली विरोधी से भिड़कर ही तुम शक्तिशाली बन सकते हो। जिस व्यक्ति को कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता उसका विकास नहीं हो पाता। जिस व्यक्ति में समझ होती है उसे कभी भय नहीं होता। समझ में ही तुम्हारी सुरक्षा है।

मैंने अपने जीवन में अनेक परीक्षाओं का सामना किया है। इनमें सबसे अधिक कठिनाइयाँ मनुष्यों को लेकर होती हैं, क्योंकि वे समझ नहीं पाते। मैंने देखा है, कितने ही व्यक्ति, जिन्हें मैंने बहुत प्रेम दिया, जिन्हें मैंने अपना हृदय तक दे दिया, मुझे गलत समझ बैठे। किन्तु इसे लेकर मेरे मन में किसी के प्रति कोई कटुता उत्पन्न नहीं हुई। यदि किसी व्यक्ति की नासमझी के कारण तुम्हारे मन में कटुता आ जाए तो तुम अपनी समझ खो बैठोगे। यदि कोई तुम्हें गलत समझ बैठे तो दुखी मत हो। इसके बजाए उस व्यक्ति की और सहायता करने के लिये उस पर अधिक ध्यान दो। यदि तुम उन लोगों के प्रति अपनी भावनाओं को शान्त कर सको जो तुम्हें गलत समझें तो तुम सदा सबकी सहायता कर सकोगे। जो लोग योगदा सत्संग (सेल्फ़-

रियलाइज़ेशन) के बताए पथ पर चलते हैं उन्हें अपने हृदय में सबके कल्याण की भावना ही रखनी चाहिए।

समझ मन और मस्तिष्क दोनों के संतुलन से आनी चाहिये

समझबूझ अंतरात्मा की दृष्टि है तुम्हारी आत्मा की दृष्टि, तुम्हारे हृदय की दूरबीन। समझ शान्त बुद्धि तथा पवित्र हृदय का परस्पर संतुलन है। भावुकता प्रेम नहीं होती: यह तो विकृत भावों से उत्पन्न होती है जिसके कारण लोग गलत कदम उठा लेते हैं। और जो समझ केवल मस्तिष्क से उत्पन्न होती है वह निर्मम होती है, और यह भी गलत कार्य करना सिखाती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी भावनाओं को जगाए बिना आप उनसे बात भी नहीं कर सकते, कुछ होते हैं जिनको तर्क के बिना नहीं समझा सकते। पुरुष प्रायः कठोरता की हद तक बौद्धिक हो जाते हैं जबकि स्त्रियाँ प्रायः भावुकता में तर्कशून्य हो जाती हैं। आपको संतुलित समझ रखनी चाहिए। जब आपकी समझ मन और मस्तिष्क दोनों से निर्देशित होती है तब आपके पास अपने और दूसरों को देख पाने को स्पष्ट दृष्टि है। तभी आप इस बात का सही मूल्यांकन कर सकेंगे कि लोग आपके विषय में क्या सोचते हैं।

सच्ची समझ आपको बताती है कि कब आप सही हैं या गलत

कभी-कभी ऐसा होता है कि आप सही हों तब भी लोग कहते हैं कि आप गलत हैं; इसी प्रकार कभी-कभी आपके गलत होने पर भी वे आपको सही कहते हैं। यदि आप में विवेक है तो आप अपने हृदय में जानते हैं कि वास्तव में आप सही हैं या गलत। आपको अपने को देखना होगा और सुधारना होगा। यदि कोई आपसे कहे कि जो आप कर रहे हैं वह गलत है, तब आपको अपने हृदय के मन्दिर में जाकर आपको पता लगाना चाहिये कि आप वास्तव में गलत हैं या नहीं। अपने उद्देश्य का निरीक्षण करिये। यदि आप गलत हैं, तब अपने आप को सुधारिए।

जिन लोगों में अधिक समझ होती है उन्हीं की सलाह पर भरोसा कर सकते हैं। इसीलिए मैं गुरुदेव पर पूरा विश्वास करता था। जैसे खुलकर मैं अपने आप से बात कर सकता था उतना ही खुलकर मैं उनसे भी बात कर

लेता था। इस प्रकार की आपसी समझ उत्पन्न करने के लिए लोगों से बात करते हुए अपने मनको उनके प्रति पूर्वाग्रहों से मुक्त करना सीखना पड़ेगा। यदि आपकी सोच स्वच्छ है तब आप सभी लोगों को प्रेम तथा उनकी सहायता कर सकते हैं और तब न तो आपकी बात से उन्हें कष्ट होगा न उनकी बात से आपको।

यदि आप सभी लोगों को प्रेम कर सकें तो यह बहुत अच्छी बात है क्योंकि ऐसी अवस्था में आप पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हुए बिना लोगों के गुणों और दोषों को देख सकेंगे। आप तभी लोगों को सच्चा प्रेम दे सकते हैं जब आपका प्रेम व्यक्तिगत इच्छाओं से मुक्त है। जब आपको ऐसी समझबूझ प्राप्त हो जाएगी तब आपको कोई भी कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

इच्छा पूरी न होने से कष्ट उत्पन्न होता है; इच्छा पूरी होने से सुख मिलता है। इसलिए हमारे जीवन में सुख और दुख आता जाता रहता है। इसीलिए भगवद्‌गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि, "सुख और दुख में समभाव से रहना चाहिए।"* उन्होंने यह नहीं कहा कि मनुष्य को निर्दयी या पत्थर के समान भावना से रहित हो जाना चाहिये। उन्होंने विवेक प्राप्त करने को कहा है। जब तुम इस प्रकार विवेक के अभेद्य किले में अपने आपको सुरक्षित कर लोगे तो दुख तुम्हें छू भी नहीं सकता, कोई भी रोग या शारीरिक यातना तुम्हारे पास पहुँच नहीं सकती।

विवेक का उपयोग करके तुम्हें अपने पथ तथा आत्मा की प्रगति का मार्ग तैयार करना चाहिए। इससे किसी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रस्त हुए बिना तुम्हें सही मार्ग दिखाई देगा। यदि तुम अपनी समझ को बनाए रखना चाहते हो तो सभी का प्रेम, और आदर करो किन्तु कभी भी न तो अपने या किसी और के पूर्वाग्रहों से अपने आपको प्रभावित होने दो क्योंकि इसके विनाशकारी परिणाम होते हैं। जैसे ही संसार तुम्हें अपने पथ से भटकाने में सफल हो जाएगा, तुम खो जाओगे। किन्तु यदि तुम्हारी बुद्धि निर्मल होगी तो चाहे कोई भी तुम्हें भटकाने का कितना ही प्रयत्न क्यों न करे तुन्हें सही क्या है दिख जाएगा।

---

* (समभाव से) सुख और दुख, हानि और लाभ, हार और जीत को समान बनाना — युद्ध का (जीवन के) ऐसे सामना करो! इस प्रकार तुम पाप के भागी नहीं बनोगे। (भगवदगीता II:३८)

गुरुदेव की शिक्षा ने मुझे स्पष्ट देखने वाली दृष्टि प्रदान की

समझ ही तुम्हारी रक्षक है। मुझे उन सभी की याद है जो गुरुदेव के पास आए थे, और बाद में चले गए क्योंकि उनमें समझ की कमी थी। किन्तु मैंने गुरुदेव से कहा कि, "चाहे बहुत से आएं या बहुत से जाएं मगर मैं सदैव आपके साथ रहूँगा।" गुरुदेव का अनुशासन बहुत कड़ा था। उनके तीक्ष्ण विवेक के सामने बहुत सारे शिष्य नहीं टिक पाए। किन्तु मैंने एक दिन उनसे कहा, "एक व्यक्ति ऐसा है जिसे आप इस प्रकार भगा नहीं सकेंगे और वह हूँ मैं।" मुझे इस बात का गर्व है कि मैं अपना वादा निभा सका क्योंकि उनकी शिक्षा ने मुझे स्पष्ट दृष्टि प्रदान की।

बहुत कम लोगों को यह पता है कि उनकी किस चीज में भलाई है। नासमझी के कारण वह प्राय: ऐसा ही काम करते हैं जिससे उन्हें ही कष्ट पहुँचता है। जब मैं सख्ती से कुछ कहता हूँ तो इसलिए नहीं कि किसी के कार्य से मुझे कष्ट हुआ है, बल्कि इसलिए कि उन कर्मों से स्वयं उन्हें ही कष्ट पहुँचेगा। यदि दूसरों के ग़लत व्यवहार से तुम्हें कष्ट पहुँचता है और उसके कारण तुम कठोर बन जाओ तो तुम उन व्यक्तियों से कभी सच्चा प्रेम नहीं कर सकते। किन्तु जब तुम अपनी समझ को साफ रखते हो तो उन लोगों की सहायता कर सकते हो जिन्हें प्रेम करते हो। तुम देख पाओगे कि वे क्या करने जा रहे हैं, कैसे करने जा रहे हैं, तथा उनके वैसा करने से क्या होगा।

कुछ लोगों पर मेरी बात का तुरन्त असर होता है; परन्तु बहुतो पर नहीं होता क्योंकि वे यह नहीं समझ पाते कि उनकी भलाई किस बात में है। जब भी मैं किसी का मार्गदर्शन करता हूँ तो मेरी केवल यही भावना होती है कि उसे यह समझा सकूँ कि उसकी भलाई किस में है। मैं किसी भी व्यक्ति को अपने लिए इस्तेमाल नहीं करता; किसी को भी नहीं!

अनेक लोग यह *सोचते* हैं कि उनमें बहुत समझदारी है। किन्तु वे किसी भी परीक्षा में खरे नहीं उतरते। अपने को विभिन्न प्रकार की विपरीत परिस्थितियों में रख कर देखिए जहाँ लोग आपकी बुराई कर रहे हों, आपका मजाक बना रहे हों और आपसे नफरत कर रहे हों और वहाँ अपनी प्रतिक्रियाओं को देखिये। यदि इन सब के बाद भी आपका मन अशान्त न हो और आप अपने हृदय से दुख और अन्याय का शिकार होने की भावना को हटाकर केवल प्रेम की भावना को रख सकें तो जान लीजिए कि यही

सच्ची समझदारी है। आश्रम में गुरुदेव मुझे निरन्तर एक जिम्मेदारी से हटा कर दूसरी जिम्मेदारी देते थे। वह चाहते थे कि मैं सभी प्रकार की परिस्थितियों में रहकर समझ पा सकूँ और चाहे वह मुझे किसी भी परिस्थिति में क्यों न रखें उनके प्रति मेरी श्रद्धा तथा मन की शान्ति पर कोई प्रभाव न पड़े। जब मुझे सभी परिस्थितियों में समभाव से रहना आ गया तब मुझे अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। इस प्रकार से जीवन बिताना बहुत सुन्दर लगता है।

अधिकांश समय लोग अपने दृष्टिकोण से ही बात और कर्म करते हैं। वे शायद ही दूसरे के पेहलू को देखते हैं, या देखने का प्रयास करते हैं। यदि नासमझी के कारण किसी व्यक्ति से तुम्हारा झगड़ा हो जाए तो समझ लो कि तुम दोनों ही दोषी हो चाहे बहस किसी ने भी क्यों न आरंभ की हो। "मूर्ख व्यक्ति बहस करते हैं, जबकि बुद्धिमान व्यक्ति बातचीत या चर्चा करते हैं।" व्यंग्य करने से क्रोध का जन्म होता है। हाँ यदि सद्‌भावनापूर्वक सत्य बोलने पर भी यदि किसी को क्रोध आ जाए तो वह आपके वश में नहीं है। आपके सच्चे मित्र वही हैं जिनमें सच्ची समझ हो और सलाह माँगने पर आपके सामने सच बोलने का साहस रखते हों। जब आपकी घड़ी ठीक समय नहीं दिखाती तो आप ठीक समय बताने वाली घड़ी से समय मिलाते हैं। इसलिए उन्हीं लोगों से मेलजोल रखना चाहिए जो विवेकशील हों तथा आपकी गलतियाँ बताने में डरते न हों। सच्चे मित्रों की यहीं कीमत है। वे आपके लिए ठीक समय बताने वाली घड़ी का काम करते हैं।

तुम्हें सदैव मन का सच्चा रहना चाहिए। दूसरों को यह मत लगने दो कि तुम उनसे सेहमत हो जब कि मन से तुम्हारा यह मतलब नहीं है। यदि तुम अपने मन की बात छिपाकर बाहरी तौर पर सहमति जताते हो तो तुम कपटी हो। मन साफ न रखना बहुत बड़ा पाप है। जैसे ही तुम किसी को जानबूझ कर धोखा देते हो तो तुम्हारी समझ पर परदा पड़ जाता है। इसके परिणामस्वरूप तुम कपटी मित्रों को ही आकर्षित करोगे।

यदि तुम चाहते हो कि लोग तुमको समझें तो तुम्हें भी लोगों को समझना होगा। तुम्हें सबको ऐसे ही प्रेम करना चाहिए जैसे कि अपने माता-पिता, बच्चों या अन्य प्रियजनों को करते हो। सभी से प्रेम करना बहुत आनन्ददायक अनुभूति है। भौतिक धरातल पर देखा जाए तो तुम मेरे कोई नहीं हो क्योंकि हमारा कोई खून का रिश्ता नहीं है। फिर भी मैंने तुम्हारे लिए

अपने परिवार से अधिक कार्य किया है। रात और दिन यही सोच कर कि यदि मैं अपने कर्तव्य को पूरा करूँ तो उससे कितनी सारी आत्माओं को आनन्द मिलेगा। मुझे पता है कि मैं कुछ लोगों के लिए ऐसा कर पाया हूँ। अनेकों लोगों को मुक्ति मिल सकी है। परन्तु, तुम्हें यह बता दूँ कि यह बहुत कठिन कार्य है। जब तुम किसी पर दबाव डालकर अपनी बात मनवाने का प्रयास करोगे तो कोई तुम्हारी बात नहीं सुनेगा। किन्तु यदि प्रेम और समझदारी के साथ किसी को अपनी बात समझाओ तो यह उसकी सबसे बड़ी सहायता होगी। मैंने जो दृढ़ सहायता तुम्हें दी है वह ऐसा प्रकाश है जो सदा तुम्हें मार्ग दिखाएगा। किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर इसे बुझने मत देना।

अपने अच्छे संकल्पों का पालन करने के लिये दुविधा में मत पड़िये

सभी अच्छे संकल्पों का पालन अवश्य करो। जितना ही अपने अच्छे संकल्पों को साक्षात स्वरूप देते जाओगे उतने ही अधिक सशक्त बनोगे। उस संत के समान बनो जिन्होंने कहा कि, "मैंने प्रतिदिन प्रातः टहलने का मन पक्का कर लिया था — परन्तु परिस्थियाँ कभी-कभी बाधा उत्पन्न करती थीं। उन अवसरों पर, चाहे देर शाम ही क्यों न हो गई हो, मैं फिर भी टहलने के लिये जाता था, कि कहीं मेरा संकल्प कमजोर न पड़ जाए।"

किसी भी कार्य के लिये मन को पक्का करने से पहले, यह निश्चित कर लो कि वह संकल्प करने के लिये अच्छा है। किन्तु जब एक बार मन बन जाए तो उससे विचलित नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से इच्छाशक्ति कमजोर पड़ने लगती है। किसी भी प्रण को तब तक नहीं तोड़ना चाहिए जब तक कि सबूत अत्यधिक उसके विपक्ष में न हों। अन्यथा, तुम जहाँ भी जाओगे तुम्हारी मानसिक कमजोरी तुम्हारे साथ जाएगी। यदि तुम किसी जंगल में चले जाओ तो क्या तुम अपनी कमजोरी को पीछे छोड़ पाओगे? नहीं। चाहे कहीं भी रहो वहीं तुम्हें अपनी जीत हासिल करनी है। किसी भी परिस्थिति से मुँह मोड़ लेने या हार मान लेने से कभी जीत नहीं होती है।

यदि समझ न हो तो अपनी स्थिति खराब बनाना बड़ा सरल है। मैं भी तर्क कर सकता हूँ और एक तरह से सही भी कि, "संसार मुझे समझता नहीं इसलिए क्यों न मैं हिमालय में जाकर बाबाजी के साथ आनन्दपूर्वक 'मुक्त आध्यात्मिक जीवन बिताऊँ।" किन्तु जब व्यक्ति में समझ होती है तो वह

सोचता है कि, "मैं चाहे जहाँ भी रहूँ मुझे विजेता बनना है।" यदि तुम अपने भीतर की कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर लो और जो आदतें तुम्हारे ऊपर हावी हो जाती हैं उनपर विजय प्राप्त कर लो तो तुम सच्चे विजेता बन जाओगे। तुम्हें कभी भी हार नहीं माननी चाहिए। मन से हार मानते ही व्यक्ति हार जाता है।

उसका साथ दो जो सही है

हम केवल कुछ ही समय के लिए पृथ्वी पर आते हैं और फिर चले जाते हैं। यहाँ कि किसी भी वस्तु के बंधन या मोह में नहीं पड़िये। जब मुझसे पहली बार इस देश (अमेरिका) का नागरिक बनने को कहा गया तो मैंने इनकार कर दिया क्योंकि मैं किसी भी देश का नागरिक नहीं कहलाना चाहता था। सभी राष्ट्र मेरे लिए अपने देश हैं और मैं पूरे विश्व का नागरिक हूँ। ईश्वर मेरे पिता हैं; और समस्त मानवजाति मेरा परिवार है। यह मुझसे कौन छीन सकता है? यदि मैं लडूँगा तो सिर्फ न्याय के लिए। यदि अमेरिका सही होगा तो मैं उसका साथ दूँगा किन्तु यदि वह गलत होगा तो उसका साथ नहीं दूँगा। मैं भारत के लिये लडूँगा यदि वह सही है, पर उसका पक्ष नहीं लूँगा यदि वह गलत है। जब भी तुम्हारा देश सही हो, उसको सहयोग दो। जहाँ भी तुम्हारा परिवार सही है, उनका साथ दो। जहाँ पर तुम्हारे मित्र सही है, उनके साथ सहयोग करो। देखा कितनी सरल सी बात है? कोई यह नहीं कह सकता कि यह सिद्धान्त गलत है। यही वह दिव्य सत्य है जो भगवान कृष्ण, ईसा मसीह तथा अन्य पहापुरुषों ने बताया है। विश्व में शान्ति इसी सिद्धान्त के द्वारा आ सकती है।

मैं तुम्हें एक कहनी सुनाता हूँ। एक मुसलमान न्यायधीश थे जो बड़े रूढ़ीवादी एवं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त थे। एक बार उनके सामने एक हिन्दू को पेश किया गया, उन्होंने पूछा कि उस पर क्या दोष है, उसने कहा, "हुजूर, आपके बैल ने मेरे बैल से लड़कर उसकी सींग तोड़ दी और अब मेरा बैल मरने वाला है।"

न्यायधीश ने उत्तर दिया, "जानवर तो एक दूसरे से लड़ते ही हैं, इसलिए यह मुकद्दमा खारिज किया जाता है।"

यह सुनकर वह चालाक गाँववाला बोला, "हुजूर, मुझसे गलती हो गई। दरसल मेरे बैल ने आपके बैल की सींग तोड़ दी है और वास्तव में आपका बैल मरने वाला है।"

यह सुनकर न्यायधीश को क्रोध आ गया और उसने उस व्यक्ति पर 50 रुपए का जुरमाना कर दिया। जब न्यायधीश का बैल मरने वाला था तो उनका "न्याय" भी बदल गया। इस कहानी से यह शिक्षा मिलती है कि हमेशा समझदारी के साथ निष्पक्ष न्यायधीश रहना चाहिए। सबसे पहले स्वयं अपने आप को तथा अपने उद्देश्य को परख लेना चाहिए। जब भी कोई संदेह हो अपने मन के न्यायालय में अपनी जाँच कर लेनी चाहिए।

ईश्वर से सम्पर्क करके समझ की प्राप्ति करो

प्रतिदिन अपना विश्लेषण करो और देखो कि तुम किस प्रकार प्रगति कर रहे हो। जैसे-जैसे तुम स्वयं अपनी निष्पक्ष जाँच करना सीखोगे वैसे-वैसे अपने आपको तथा अन्य लोगों को बेहतर ढंग से जानने लगोगे। यही तरीका है सच्चे जीवन का। यदि तुम जीवन तथा मृत्यु में समझदारी बनाए रखो तो अमरत्व को प्राप्त कर लोगे।

मेरा उद्देश्य कोई बड़ा संगठन बनाने का नहीं है। मेरा उद्देश्य है कि लोगों के जीवन का निर्माण योगदा सत्संग सोसाइटी (सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप) द्वारा दी जाने वाली शिक्षा पर आधारित हो। इसीलिए मैं मन्दिरों में बहुत सारे लोगों को एकत्र करने का प्रयास नहीं करता। हम यहाँ केवल उन्हीं लोगों को बुलाना चाहते हैं जो वास्तव में ईश्वर से सम्पर्क करना चाहते हैं। ईश्वर को बौद्धिक रूप से या मन को उद्वेलित करने वाले उपदेशों को सुन लेने मात्र से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मेरी अंतरात्मा के भीतर जो निहित है वह मेरे लिये अत्यन्त पवित्र है। मैं बिना किसी नियोजन के नहीं बोल सकता; मैं वही बात कहता हूँ जिसे मैंने स्वयं अपने जीवन के अनुभवों से परखा है। इसीलिए ये सत्य मेरे लिये इतने वास्तविक हैं। मैं यहाँ कोई उपदेश देने नहीं आया हूँ बल्कि वह सत्य बताने आया हूँ जो मेरे अनुभव के उपवन में प्रस्फुटित हुए हैं। मैं पवन के उस झोंके के समान हूँ जो स्वर्ग से परमपिता के सत्य की सुगंधि लिए हुए है। मुझे अपने लिए तुमसे कुछ भी नहीं चाहिए। मैं इतना ही चाहता हूँ कि वह दिव्य सुगंध तुम सब तक पहुँचा दूँ और उसके बाद ईश्वर की गोद में फिर समा जाऊँ। मैं चाहता हूँ कि मैं जो तुम्हें दे रहा हूँ उसका अनुभव ईश्वर के सम्पर्क के जरिए तुम स्वयं करो। उस समझ की बराबरी और कोई चीज नहीं कर सकती। □

See page 25 for ordering information

अपने आध्यात्मिक प्रयासों को केन्द्रीकृत करना

द्वारा श्री श्री दया माता

सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय, लॉस एंजेल्स, कैलीफ़ोर्निया, मार्च 31, 1965 सत्संग में दिए गए प्रवचन से उदधृत

प्रश्न: आध्यात्मिक पथ पर प्रगति करने के लिए व्यक्ति की उम्र कितनी संगत है ?

व्यक्ति की उम्र नहीं वरन् उसका उत्साह उसकी आध्यात्मिक प्रगति निश्चित करता है। कुछ लोगों में यह उत्साह 16 वर्ष की उम्र में होता है, किसी में 80 वर्ष की उम्र में आता है तो किसी में होता ही नहीं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस व्यक्ति में ईश्वर प्राप्ति की तीव्र इच्छा होती है वह सब बाधाएँ पार कर सकता है।

सामान्य रूप से मानव स्वभाव की यह प्रवृत्ति होती है और यह सच भी है, कि जितनी ही कम उम्र में व्यक्ति स्वयं को आध्यात्मिक विचार और अनुशासन के अनुरूप प्रशिक्षित करना शुरू करता है उसे आगे बढ़ने में उतनी ही आसानी रहती है। छोटा सा नया पौधा बिना टूटे झुकाया जा सकता है जब कि पुरानी डाल झुकाए जाने पर टूट सकती है। ऐसा ही मनुष्यों के साथ है : कुछ लोग लचीले होते हैं, कुछ लोग अड़ियल होते हैं; जैसा कि गुरुजी कहा करते थे कुछ लोग मनोवैज्ञानिक फ़र्नीचर होते हैं — जो कभी नहीं बदलते हैं। ज्ञानमाता इस विषय में एक सुन्दर उदाहरण हैं कि उम्र प्रगति में आवश्यक नहीं कि बाधा डाले। वे इस पथ पर अपने जीवन में बहुत देर से आईं परन्तु उन्होंने अतिशीघ्र प्रगति की क्योंकि उनमें बहुत अधिक समझदारी, सही दृष्टिकोण एवं उत्साह था।*

---

* ज्ञानमाता ("ज्ञान की माँ") सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप संन्यासी परम्परा की पहली संन्यासिनी थीं। उन्होंने 1932 में आश्रम में प्रवेश किया था जव वे लगभग 60 वर्ष की रही होंगी। "गाड एलोन" पुस्तक में उनका जीवन परिचय है, जिसे योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया ने "द लाइफ़ एण्ड लेटर्स ऑफ ए सेन्ट" के रूप में प्रकाशित किया है।
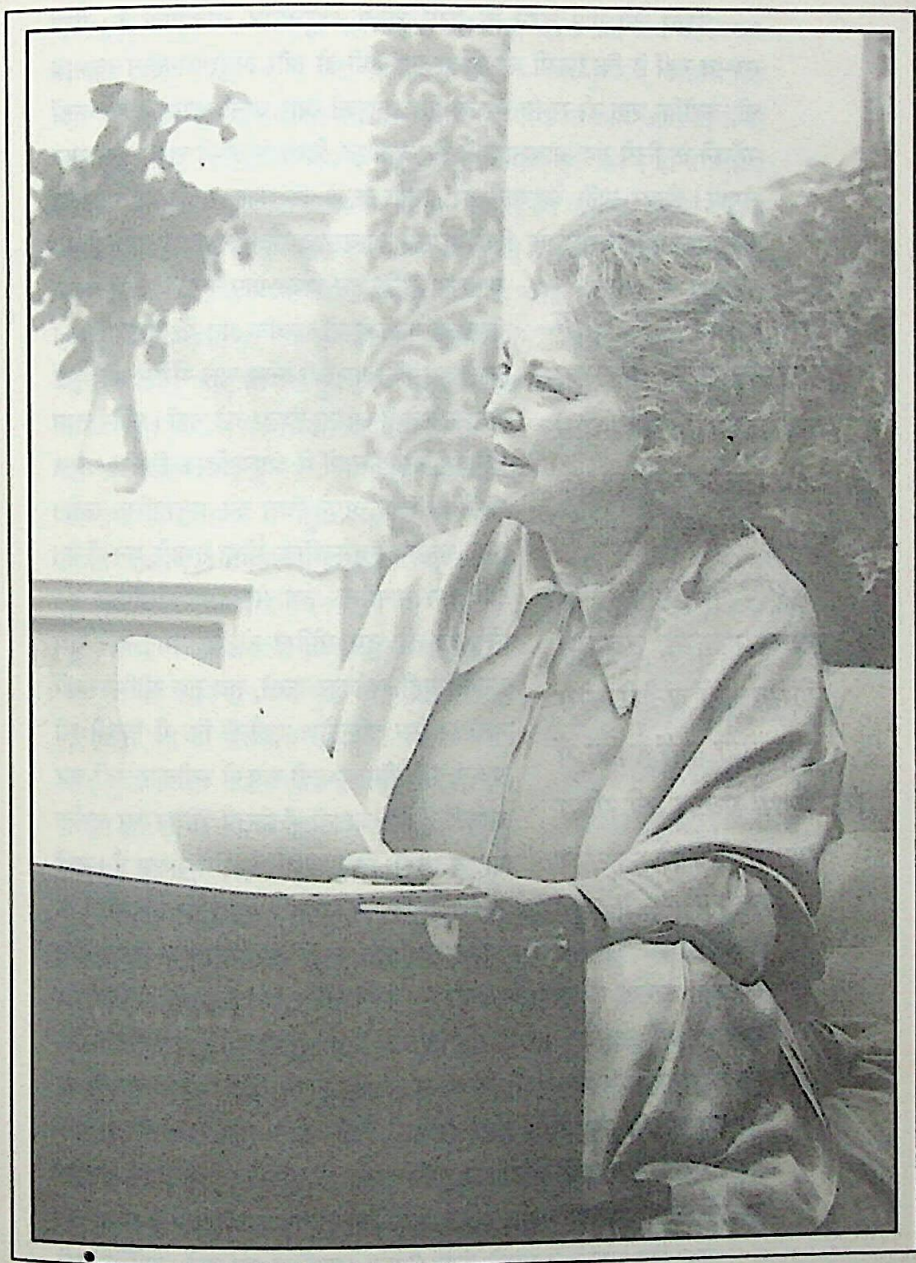
ईश्वर को प्राप्त करने के लिए आत्म-अनुशासन आवश्यक है। ऐसा सम्भव नहीं है कि किसी को ईश्वर प्राप्ति भी हो और अनुशासनहीन स्वभाव भी, क्योंकि एक ही समय पर दो दिशाओं की ओर जाना असंभव है। कहीं पहुँचने के लिये यह आवश्यक है कि वह एक दिशा में अपने लक्ष्य पर ध्यान लगाए। ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर प्रगति करने के लिए सद्व्यवहार, सही दृष्टिकोण एवं उत्साह के लिए प्रयास आवश्यक है। निष्ठावान बनो। यह पाखण्ड है कि तुम ईश्वर प्राप्त करने के प्रयास का दिखावा कर रहे हो जबकि मन में दुर्विचारों को पाले हुए हो। पाखंडी लोग सारे संसार को मूर्ख बना सकते हैं, परन्तु ईश्वर को नहीं। ध्यान तथा दैनिक क्रियाकलापों में आध्यात्मिक विचार धारण करने के लिए अपने चित्त को अनुशासित रखो।

"एकमात्र वास्तविक सीमा तुम्हारे मन में है। यदि तुम मानसिक रूप से सीमाएँ स्वीकार कर लेते हो तब तुम सीमित हो जाओगे। यदि तुम उनको नहीं स्वीकार करते, तब तुम सीमित नहीं बनोगे। मेरा दृष्टिकोण यहीं है कि मैं किसी भी प्रकार की सीमा स्थायी रूप से स्वीकार नहीं कर सकती हूँ।"

एकमात्र वास्तविक सीमा तुम्हारे मन में है। यदि तुम मानसिक रूप से सीमाएँ स्वीकार कर लेते हो तब तुम सीमित हो जाओगे। यदि तुम उनको नहीं स्वीकार करते, तब तुम सीमित नहीं बनोगे। मेरा दृष्टिकोण यहीं है कि मैं किसी भी प्रकार की सीमा स्थायी रूप से स्वीकार नहीं कर सकती हूँ। मैं जानती हूँ कि मैं जीवन भर पूर्णता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने में सक्षम हूँ। यहीं सही दृष्टिकोण है। किसी भी प्रकार की सीमा के समक्ष कभी हार न मानो। सकारात्मक विचारधारा के बनो, उत्साह से भरपूर। उचित एवं सही लक्ष्य प्राप्त करने के लिए स्वयं से कहो, "मैं यह कर सकता हूँ," यद्यपि कभी-कभी तुम्हें ऐसा लगेगा कि तुम यह नहीं कर सकोगे। उसके अच्छे पहलू को देखो। यही गुरुजी का स्वभाव था। वे हम सबसे कहा करते थे, "मैं अपने आस पास नकारात्मक प्रवृत्ति वाले तथा मूडी लोगों को नहीं चाहता।" इसलिए हमें अपने मूड से छुटकारा पाना पड़ता था और सकारात्मक विचारधारा को विकसित करते थे।

एक दिन गुरुजी ने मुझसे कहा, "सदा आनन्दित रहा करो, क्योंकि यही तुम्हारी प्रकृति है।" जो कुछ वह मुझसे कहते थे मैं उस पर विचार करती थी,

केवल कुछ समय के लिए ही नहीं बल्कि इस तरह, कि उनकी बात मेरे विचार में समा जाए: "आनन्द, मैं सदा आनन्द में रहूँगी — परन्तु कैसे, जबकि मेरा मन तो अपने अनेक उत्तरदायित्वों से संबंधित समस्याओं और कठिनाइयों से भरा हुआ है?" इसपर मेरे गुरु ने मुझसे कहा: "यदि तुम प्रसन्न होना चाहती हो तो तुम्हें कोई भी व्यक्ति अप्रसन्न नहीं कर सकता है। यदि तुम अप्रसन्न होना चाहती हो तो कोई भी तुम्हें प्रसन्न नहीं कर सकता है।" तब मैं समझ गई:-इसका आरंभ 'मानसिक समभाव' का अभ्यास करने से होगा। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से इसी विषय में कहा था, "अपने मन को समरस करो।"* जब तुम समभाव रखने के लिए संघर्ष करते हो तब तुम द्वैत के सिद्धान्त का प्रतिरोध करते हो। समभाव के अभ्यास से तथा गहन ध्यान के द्वारा तुम्हारा मन उस ईश्वर से जुड़ जाता है जो अपरिवर्तनशील है। तब तुम पूर्ण आन्तरिक उल्लास की अवस्था में पहुँच जाते हो जो न तो किसी अवरोध से डगमगाती है नाहीं सौभाग्य आने पर भावात्मक रूप से उत्तेजित होती है।

"ईश्वर को प्राप्त करने के लिए आत्म-अनुशासन आवश्यक है। ऐसा सम्भव नहीं है कि किसी को ईश्वर प्राप्ति भी हो और अनुशासनहीन स्वभाव भी।"

कभी भी उत्तेजनाओं को अपनी भावनाओं पर नियंत्रण मत करने दो। जब कुछ बुरा घटित होता है तो चिढ़ो मत या प्रतिशोध की इच्छा भी न करो। यदि कुछ अच्छा घटित होता है और तुम अत्यन्त प्रसन्न होते हो तो उस उल्लास को आवेश में आकर नष्ट मत कर दो। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम मुँह लटका लो। पर कभी-कभी तुम इतने प्रसन्न हो जाते हो, कि जितना भी अन्दर आनन्द था वह सब व्यय हो जाता है, और जल्दी ही सारी प्रसन्नता समाप्त हो जाती है। इससे बचना चाहिये।

ईश्वर प्राप्ति के इच्छुक होने के कारण उस पर पूर्ण आस्था बनाए रखो और प्रतिदिन आने वाली परिस्थितियों को स्वीकार करो। वह ईश्वर ही है जिनसे तुम रोज सम्पर्क करते हो — कोई और नहीं। वह हमारे साथ कर्म के सिद्धान्त और प्रेम के माध्यम से कार्य करते हैं। हमें अच्छा या बुरा कोई भी ऐसा अनुभव नहीं प्राप्त होता है जिसके हम अधिकारी नहीं हैं। भले ही वह सकारात्मक या

---

* "हे अर्जुन (मनुष्यों में कमल)! जो व्यक्ति दुःख-सुख दोनों में शान्त एवं समरस रहता है, जिनकी शान्ति ये भंग नहीं कर सकते, वही शाश्वत को पाने का अधिकारी है।" (भगवद्गीता II:15)

नकारात्मक रूप में मिला आशीर्वाद ही हो। हम जो बोते हैं वही काटते हैं। इसलिए जब कठिनाइयाँ आएं, तो कहो, "हे प्रभु, ठीक है यह कठिनाई मेरे लिए अब आवश्यक होगी। मैं इसका अच्छे से अच्छा सामना करने का प्रयत्न करूँगा। इसके कारण मैं अधिक दृढ़ तथा बुद्धिमान बन सकूँ और आप पर सदा अपना ध्यान केन्द्रित रख सकूँ।" इस प्रकार के दृष्टिकोण से साधक की आध्यात्मिक विचारधारा में प्रगति होती है। भाग्य को दोष देते हुए यह कहना गलत है, "यदि मेरा शरीर अधिक स्वस्थ होता तो मैं और अच्छा कर लेता," या "यदि मेरे पास यह अथवा वह होता तो मैं स्वयं को अधिक अच्छी तरह परिवर्तित कर सकता था," या "उस व्यक्ति के पास मेरी तुलना में अधिक है, सब मेरे साथ बुरा बर्ताव करते हैं।" ऐसे विचार अपने मन में कभी मत आने दो: वे सत्य के अनुकूल नहीं है और आध्यात्मिक प्रगति में बाधा डालते हैं।

"सकारात्मक विचारधारा के बनो, उत्साह से भरपूर। उचित एवं सही लक्ष्य प्राप्त करने के लिए स्वयं से कहो, 'मैं यह कर सकता हूँ,' यद्यपि कभी-कभी तुम्हें ऐसा लगेगा कि तुम यह नहीं कर सकोगे।"

तुम्हें ईश्वर प्राप्ति से कोई नहीं रोक सकता है। ईश्वर को अपना सर्वोच्च लक्ष्य बनाओ और यह आस्था बनाए रखो कि तुम्हारा जीवन सचमुच उनके हाथ में हैं। आध्यात्मिक जीवन इतना ही सरल है।

अधिकतर लोग अपनी भावनाओं तथा आदतों के कारण जीवन को जटिल बना लेते हैं। जीवन को सरल बनाने से क्या अभिप्राय है? यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उसने वही किया जैसा कि ईश्वर ने उससे आशा की थी तब परिणाम कुछ भी हो उसे अपनी चेतना की गवाही के कारण शान्त और सन्तुष्ट रहना चाहिए। यही सरलता है। भ्रम एवं शंका के कारण अपने जीवन को जटिल न बनाओ!

ईश्वर के साथ अपना सीधा संबंध बनाओ। प्रतिदिन के आरंभ में मैं कहती हूँ: "हे ईश्वर, मैं आपके लिए सर्वोत्तम कर सकूँ। परिणाम आपके हाथ में है।" और तब जो भी सामने आता है मैं उसे स्वीकार कर लेती हूँ। ऐसे में समस्याएँ आती हैं परन्तु उनके कारण मैं विचलित नहीं होती हूँ। मैं प्रत्येक

कार्य व चुनौती के समक्ष जितना अच्छा कर सकती हूँ करती हूँ। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हर बार तुम सर्वोत्तम करो, ईश्वर तुम्हारी सफलता में व्यवधान डाल देंगे। तुम्हें यह भी सीखना होगा कि किस प्रकार हार स्वीकार की जाए। एक अच्छा हारने वाला व्यक्ति होने का अर्थ है कि इस संसार में ईश्वर के साथ तुम्हारे संबंध से बढ़कर और कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है।

जब तुम्हारा मन सिर्फ ईश्वर पर केन्द्रित होता है, तब तुम जीवन के सभी अनुभवों को एक समान बिन्दु पर ले आते हो, और वह है कि हर अनुभव को उनसे जोड़ देना, जिससे तुम जीवन की सभी अवांछित जटिलताओं से परे हो जाते हो और उन बातों से अप्रभावित रहते हो जो अन्य लोगों के लिए दुःखदायी होती हैं। "उसने यह किया; उसने वह किया; मेरी प्रोन्नति नहीं हुई; उस व्यक्ति ने पहचान बना ली; मेरी उपेक्षा कर दी।" — इन बातों का क्या महत्त्व है? क्या इनका ईश्वर के साथ तुम्हारे संबंध का कुछ लेना-देना है? मैं जानती हूँ वह अनुशासन कैसा है; मैंने उसे जिया है। और मैं यह भी अच्छी तरह से जानती हूँ कि इसके मुक्तिदायक प्रभाव क्या हैं?

प्रश्न: अपने मार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्ग के संतों के प्रति हमारा सही आचरण क्या होना चाहिये?

सबके प्रति सम्मान रखो, परन्तु अपने गुरुओं के प्रति निष्ठावान रहो। एक विशेष विचारधारा का होने का मतलब संकुचित विचारधारा वाला होना नहीं है परन्तु निष्ठा के अभाव में साधक भ्रमित हो जाता है। जो लोग एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भागते रहते हैं वे किसी के प्रति निष्ठावान नहीं रह पाते और अपने प्रयास में असफल हो जाते हैं।

तुम सब लोग हनुमान की कथा जानते हो। वह अपने गुरु के रूप में केवल एक ही को जानते थे; "राम, राम, राम," सदा उनके होठों पर रहता था। यह कहा जाता है कि उनका ईश्वर के उन रूप के प्रति इस प्रकार का समर्पण एवं भक्तिभाव था कि एक बार हनुमान ने अपना सीना चीर कर यह दिखा दिया कि उनके हृदय मंदिर में केवल राम की मूर्ति स्थापित है।

भारत में मैंने उस दिव्य परम आनन्द का अनुभव किया है जहाँ मैंने पूर्ण रूप से हनुमान एवं राम के बीच का सुन्दर संबंध जाना है। बाद में मुझे याद है मैं सोच रही थी — "इतना अद्‌भुत अनुभव शब्दों में नहीं बताया जा सकता है — यह मादकता तभी आती है जब चेतना सभी को प्रेम और

सम्मान करते हुए ईश्वर के किसी एक माध्यम पर से केन्द्रीकृत होते हुए ईश्वर की एकात्मकता में लीन हो जाती है।"

व्यक्ति को ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट अपने गुरु के प्रति यही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। हम अपने गुरु परमहंस योगानन्द के प्रति ऐसा ही अनुभव करते हैं: एकनिष्ठ भक्ति। यद्यपि गुरुजी हमारे बीच सशरीर नहीं हैं परन्तु उनकी उपस्थिति सदा हमारे साथ है, हम उनके सम्पर्क में होने पर यह अनुभूति प्राप्त करते हैं वे सदा हमारे व हमारी संस्था के गुरु रहेंगे — हमें नाहीं किसी अन्य की आवश्यकता है और नाहीं पाना चाहते हैं। हमारे हृदय और चित्त उनकी ईश्वर के एकाकार की चेतना में बंधे हुए हैं। उस चेतना में हम उन सबके प्रति श्रद्धा-भाव रखते हैं जो ईश्वर से प्रेम करते हैं।

"जब तुम समभाव रखने के लिए संघर्ष करते हो तब तुम द्वैत के सिद्धान्त का प्रतिरोध करते हो। समभाव के अभ्यास से तथा गहन ध्यान के द्वारा तुम्हारा मन उस ईश्वर से जुड़ जाता है जो अपरिवर्तनशील है।"

संकुचित विचारधारा के कभी न बनो, यह आचरण धर्म में प्रायः पाया जाता है। ईश्वर से प्रेम करने में संकुचित विचारधारा के लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु लोग निष्ठा का आदर करते हैं। इस संसार में यदि मुझे याद किया जाए तो वह मेरी अपने गुरु के प्रति निष्ठा व भक्ति के कारण ही हो जिन्होंने ईश्वर से मेरा परिचय करवाया। यह संकुचित विचार नहीं है यदि कोई अपने गुरु का अनुगमन इस प्रकार से करे कि वह किसी दूसरे की सलाह न ले फिर भी सब का सम्मान करे। शिष्य के लिए यही सही दष्टिकोण है। गुरु के प्रति निष्ठा न होने पर शिष्य ईश्वर के प्रति निःशर्त निष्ठा रखना नहीं सीख पाता है। यह अत्यन्त गहन व सूक्ष्म सत्य है। एक साधक के जीवन में अनेक ऐसे समय आएँगे जब उसे यह प्रमाणित करने का अवसर मिलेगा कि वह गुरु के प्रति निःशर्त निष्ठा रखने योग्य है या नहीं। इस एकनिष्ठ विचारधारा के बिना, वह गुरु के मार्गदर्शन के लिए पूर्ण रूप से ग्रहणशील नहीं हो सकता है। इसके लिए मन मस्तिष्क और आत्मा का पूर्ण रूप से समर्पण करना पड़ता है। जिसने यह समर्पण सीख लिया वह ईश्वर के प्रति निःशर्त समर्पण करने में सक्षम होता है। तब समझ का अनमोल धन उसे प्राप्त होता है।

मैं कभी-कभी यह सोचती हूँ कि गुरुदेव ही केवल ऐसे व्यक्ति हैं जिनके ऊपर मेरा इस प्रकार का गहन विश्वास है कि मैं चाहे जो कुछ करूँ वे सदा मुझे आवश्यकता पड़ने पर मेरे साथ होंगे। प्रत्येक व्यक्ति इस तरह के संबंध की आकांक्षा करता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की आशा करता है जिसके साथ वह इस प्रकार की दैवी मित्रता बाँट सके। एक ऐसा मित्र जो उसे कभी न छोड़े। जो प्रेम और निष्ठा हम अपने गुरुदेव को देते हैं उसे वे अपने पास न रखकर ईश्वर को अर्पित कर देते हैं। गुरु जो ईश्वर के जीवित प्रतिनिधि हैं, अपने निष्ठा रखने वाले चेले को ब्रह्माण्डीय प्रेम में समाहित कर लेते हैं, जहाँ से प्रेम की अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियों ने जन्म लिया है। ईश्वर ही सखा, माता, पिता और गुरु रूप हो जाते हैं — उस दैवी प्रेम में एकरूप हो जाते हैं जिसकी तुलना सामान्य प्रेम से नहीं हो सकती है। उस समय सभी से प्रेम करना सरल हो जाता है जब ईश्वर तुम्हारी आत्मा के प्रेमी बन जाते है। ❑

ज्ञानावतार श्री श्री स्वामी श्रीयुक्तेश्वर गिरि
श्री श्री परमहंस योगानन्द जी के गुरुदेव

"वह दिव्य स्वरूप .... जिसका मैंने सहस्त्रों बार ध्यान में दर्शन पाया .... उनके प्रशान्त नेत्र, सिंह जैसा शीर्ष, मर्मस्पर्शी दाड़ी व बिखरे बालों को देखा....।"

— श्री श्री परमहंस योगानन्द

श्री श्री स्वामी श्रीयुक्तेश्वर जी की शिक्षाएँ

(मई १०, १८५५ — मई १०, २००५)

याद रखो कि ईश्वर-प्राप्ति का अर्थ है: सभी दुःखों का अन्त।

समुद्र के समान विशाल बनो, जिसमें इन्द्रियरूपी नदियाँ शान्ति से विलीन हो जायें। नित्य नवीन कामनाएँ तुम्हारी आन्तरिक शान्ति को सोख लेती हैं। वे जलाशय के छिद्रों के समान हैं; जिनमें से अमृत-तुल्य जल बहकर भौतिकता की मरुभूमि में नष्ट हो जाता है। कुवासनाओं का शक्तिशाली और अति सक्रिय वेग मानव के सुख का सबसे बड़ा शत्रु है। आत्मसंयमी बनकर सिंह की भाँति इस जगत में विचरण करो। मेढक रूपी इंद्रीय सुख की दुर्बलताओं के कारण उनकी लालसाओं के पद प्रहार से बचो जो तुम्हें नचा मारेंगे।

मनुष्य आत्मा है, और उसे शरीर मिला हुआ है। जब वह अपनी वास्तविक पेहचान को (आत्मा से जुड़कर ना कि अहम से) उचित स्थान पर रखता है, तब वह अनिवार्य अतिक्रमों को पीछे छोड़ देता है।

जब क्रियायोग द्वारा मन इन्द्रियजन्य विकारों से शुद्ध हो जाता है, तब ध्यान ईश्वर का दुहरा प्रमाण प्रस्तुत करता है। चिर नूतन आनन्द उनके अस्तित्व का प्रमाण है, जो हमारे अणु-अणु को उनकी अनुभूती करा देता है। साथ ही, ध्यान में उनसे तुरंत मार्गदर्शन मिल जाता है, प्रत्येक कठिनाई का समुचित समाधान।

ज्ञान को आँखों से नहीं अपितु अपने अस्तित्व के अणु-परमाणुओं द्वारा आत्मसात् किया जाता है। जब सत्य के प्रति तुम्हारा विश्वास केवल मन तक ही सीमित न रहकर तुम्हारी समग्र सत्ता में व्याप्त हो जायेगा, तभी तुम दूसरों को भी उसका अर्थबोध करा सकोगे।

सन्त होने का अर्थ नासमझ होना नहीं है। ईश्वरानुभूति असक्षम नहीं बनाती। सद्‌गुणों को व्यवहारिक रूप में व्यक्त करने से अति तीक्ष्ण बुद्धि का विकास होता है।

साधारण प्रेम स्वार्थी होता है; जो कामनाओं और उनकी तृप्ति की अंधकारमय जड़ों में निहित होता है। दिव्य प्रेम बिना शर्तों के होता है, बिना सीमाओं के और अपरिवर्तनीय होता है। विशुद्ध प्रेम के भेदनकारी स्पर्शमात्र से मानव हृदय की अस्थिर्ता सदा के लिये लुप्त हो जाती है।

आत्मा की मुस्कान

द्वारा
स्वामी भक्तानन्द गिरि

सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप, लॉस एंजेल्स 1979 में दी गई वार्ता का सार संक्षेप

1930 के दशक की मंदी के जमाने में गुरुदेव (परमहंस योगानन्द)ने "मुस्कान के धनी" संबोधन को जन्म दिया। उन दिनों धन का बहुत अभाव था, लोगों का उत्साह फीका पड़ चुका था तथा पूरा देश (अमेरिका) अवसाद में डूबा था। पूरे देश पर इसका बुरा प्रभाव पड़ रहा था और परमहंसजी ने भी इसका अनुभव किया। उनके पास एक अंतर्राष्ट्रीय मुख्यालय था जो गिरवी था और उन्हें उसकी रकम चुकानी थी तथा आश्रम में बढ़ते संन्यासियों के खाने पीने और रहने के खर्च के लिए भी धन की आवश्यकता थी; इसके साथ ही पूरे विश्व के जिज्ञासुओं के लिये वह शिक्षाओं के वितरण का भी प्रयास कर रहे थे। स्पष्ट है कि उन्हें भी इन सब कारणों से आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ रहा था। किन्तु इसके बावजूद भी उन्हें इस देश पर भरोसा था। और इस संकट से उबर आने की उसकी क्षमता पर कोई संदेह नहीं था।

वे जहाँ भी जाते थे लोगों में सकारात्मक चेतना को वापस लाने का प्रयत्न करते थे। वे उनसे कहते थे "भले ही आप आर्थिक रूप से धनी न भी हों फिर भी मुस्कान के धनी तो हो ही सकते है!"

उनकी निराशा की भावना को दूर करने के लिए गुरुदेव ने उन्हें बताया कि वे इस बात पर ध्यान दें कि ईश्वर की संतान होने के कारण वे वास्तव में क्या हैं। ईश्वर, दुख या उदासीनता के भगवान नहीं हैं वह परमानन्द के भगवान हैं और हम उनके स्वरूप में बने

हैं। तो कभी भी हम ऐसा क्यों मानें कि हम तंगी में हैं या हमें किसी चीज की कमी है? बैंक के खाते या नौकरी में तरक्की पा लेने की चिंता करने से ही समृद्धि अथवा सफलता नहीं मिलती। अपनी समस्याओं को दूर करने के लिये सकारात्मक कदम उठाने पड़ेंगे उसके लिये सर्वप्रथम आवश्यकता हैं एक सकारात्मक मानसिक अवस्था की। याद रखो सच्चे दिल से आई मुस्कान सफलता दिलाने का बहुत सशक्त साधन है। एक पुरानी कहावत है कि "जो व्यक्ति मुस्कुरा नहीं सकता उसे दुकानदारी नहीं करनी चाहिए।" इसलिए प्रतिदिन कुछ समय निकालकर मस्तिष्क को सांसारिक चिंताओं से मुक्त करके उसे विश्राम देना चाहिए तथा समय निकालकर अपने भीतरी आनन्द को अनुभव करना चाहिए।

खुशमिजाजी: विजेता होने के लिए महत्वपूर्ण है

कुछ लोग आदतन निराशावादी होते हैं: उन्हें जीवन में निराशा ही निराशा दिखाई देती है, वे कभी भी जीवन के सुन्दर पहलुओं को नहीं देखते। वह ऐसे व्यवहार करते हैं जैसे कि जीवन में खुश रहना बिलकुल असम्भव है। पर यह गलत मनोवृत्ति है। बाइबिल में अनेक स्थानों पर यह लिखा पाते हैं, "वह समय आ कर गुज़र गया।" नश्वर जीवन में सबकुछ गुज़र ही जाता है — दोनों, अच्छा समय भी और बुरा भी। केवल ईश्वर ही अपरिवर्तनीय हैं। जब हम अपने को उनसे जोड़ लेते हैं तब हम भी सदैव परमानन्द में लीन रहते हैं। इसलिए जब भी दुख सताए तो हमें खुद को याद

"प्रत्येक व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का सरल तरीका खोजता है और गुरुदेव के पास भी खुशी की प्राप्ति का एक सरल मार्ग था: बस खुश रहो। हाँ, यह वास्तव में इतना ही सरल है। हमें अपने जीवन को स्वयं ही कठिन बनाने में बड़ी खुशी मिलती है और साथ ही आध्यात्मिक पथ के लिए भी हम कठिन और समझ में न आने वाले तरीकों को ढूंढते रहते हैं। किन्तु ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है; गूढ़ सत्य वास्तव में बहुत सरल है।"

कराना चाहिए कि "यह भी गुजर जाएगा।"

कठिन अनुभवों का सकारात्मक पेहलू, यह है कि, वह हमें ईश्वर की ओर तीव्रता से मुड़ने के लिये कोंचते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि जब तक कोई समस्या सामने न आ जाए हम यह जान ही नहीं पाते कि हमारी आध्यात्मिक प्रगति हो रही है या नहीं। चाहे हमारे साथ कुछ भी घटित हो जाए, यदि हम उस परिस्थिति से प्रभावित हुए बिना गुजर जाएँ या उससे भी अच्छा यह होगा कि उसके बाद हम प्रसन्न हों कि जो कुछ हुआ अच्छा हुआ, तो इसका अर्थ यह होगा कि हमारी आध्यात्मिक प्रगति हो रही है। किन्तु यदि हम विपरीत स्थिति में दुखी हो जाएँ तो इसका अर्थ यह होगा कि हमने मन ही मन हार मान ली है और इससे न केवल हमें अवसाद हो जाएगा बल्कि हमारे आसपास के अन्य लोगों पर भी उसका कुप्रभाव पड़ेगा।

प्रायः लोग प्रसन्न होने के लिए इतने प्रकार की शर्तें उस पर रख लेते हैं। जैसे कि, "जब तक मैं पढ़लिख नहीं जाऊँगा तब तक प्रसन्न नहीं हो सकता। जब तक मुझे दूसरी नौकरी न मिल जाए मैं प्रसन्न नहीं हो सकता। जब तक मेरी अच्छी जगह शादी न हो जाए मुझे चैन नहीं मिलेगा या मुझे न्यूयॉर्क जाए बिना शान्ति नहीं मिल सकती आदि।" गुरुदेव का कहना है कि "चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए, मनुष्य को प्रसन्न रहना चाहिए। जैसे न्यूयॉर्क के लिए जाते हुए रास्ते में यदि दृश्यों का आनन्द लेते हुए चलो तो तुम्हें न्यूयॉर्क पहुँचने से पहले ही आनन्द मिलने लगेगा। तो फिर रास्तेभर दुखी रहने की क्या आवश्यकता है? रास्ते में पैट्रोल भरने वाले से बातें कर के ही आनन्द लो; इसी प्रकार, रास्ते में खाने का भी आनन्द ले सकते हो; अपनी यात्रा का पूरा आनन्द लेना चाहिए। इसलिए वर्तमान में खुश रहो! आनन्द को अपनी इच्छा पूरी होने तक क्यों स्थगित करते हो?"

इसी प्रकार ईश्वर को प्राप्त करने की यात्रा में खुश होने के लिये हमें उस वक्त की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए जब ईश्वर हमें दर्शन देंगे। गुरुदेव बताते थे कि उनके गुरु, स्वामी श्रीयुक्तेश्वर आश्रम में ईश्वर को खोजने के लिए आए शिष्यों को दुखी चेहरा बनाने की आज्ञा नहीं देते थे। वे उनसे कहते थे, "क्या तुम किसी शोकसभा में आए हो? क्या तुम नहीं जानते कि ईश्वर की प्राप्ति सभी दुखों का अंत कर देती है?" इसलिए कभी-भी दुखी नहीं रहना चाहिए। इस जीवन को

अधिक गंभीरता से मत लीजिये। हर एक दिन का स्वागत मुस्कुरा कर करना सीखिये। सुबह को ही अपना मन बना लें कि, "आज मैं पूरे दिन प्रसन्न रहूँगा। मैं प्रसन्न रहने के तरीके खोज लूँगा और मैं जिससे भी मिलूँगा उसको मुस्कान दूँगा।"

अपनी मुस्कान से लोगों की सहायता करें

हमारे उपर दूसरों को कुछ देने का कर्ज है; हमारा उत्तरदायित्व है कि हम वह कर्म करें जो उन्हें उन्नत बनाता हो। कई बार हम यह भूल ही जाते हैं कि जिन लोगों से हमारा वास्ता पड़ता है वे भी इनसान हैं जो सोचते समझते हैं और उनकी भी भावनाएँ होती हैं। कई बार हम उनके साथ ऐसे बर्ताव करते हैं जैसे वे निर्जीव चीज़ें हों। अपने संपर्क में आने वाले लोगों से फर्नीचर जैसा बर्ताव न करिये क्योंकि वे भी आत्माएँ हैं। हम सभी ईश्वर की संतानें हैं जो संसार में एक ही उद्देश्य से आए हैं; अपने दिव्य स्वरूप को फिर से प्राप्त करने। हम सबको यह उद्देश्य पूरा करने में एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए। मुस्कुराहट में ऐसी शक्ति होती है जिससे दूसरे लोगों में उत्साह का संचार होता है और वे भी प्रसन्न होते हैं। जो भी कोई मुस्कान देखता है उसे प्रकाश मिलता है। मुस्कान कहती है, "मैं आपको देखकर प्रसन्न हूँ और आपको चाहता हूँ, ईश्वर आप पर कृपा करें।" जाने या अनजाने मुस्कुराहट यहीं व्यक्त करती है।

गुरुदेव कभी-कभी अपने आप में गंभीर और अंतर्मुखी हो जाते थे। किन्तु जब वे लोगों के साथ होते थे तो सदा ही प्रसन्न रहते थे। एक दिन उन्होंने मुझे गाड़ी चलाकर एक सभा में ले जाने को कहा जहाँ उन्हें कुछ व्यावसायिक लोगों के सामने व्याख्यान देना था। जब वे उस हॉल में पहुँचे जहाँ वह कार्यक्रम होना था तो गुरुदेव पहले उसके साथ वाले कमरे में गए। मैं सभा कक्ष में उनकी प्रतीक्षा करने चला गया। व्यवसायी लोग सभा कक्ष में आसपास छोटे-छोटे समूहों में खड़े आपस में बातचीत कर रहे थे और उनकी चर्चा से वहाँ का वातावरण उदास और भारी सा हो गया था। थोड़ी देर बाद गुरुदेव आए और एक एक करके व्यावसायियों के समूहों के पास जा जाकर मुस्कान के साथ उनसे बात करने लगे और उन्हें हंसाने लगे। कुछ ही मिनटों में उन्होंने एकत्रित समूह का मूड ही परिवर्तित कर दिया। पूरा स्थान प्रसन्नता और आनन्द की भावना से भर गया। वे सभी व्यवसायी लोग जो गंभीर

और उदास थे अब उतना ही आनन्द ले रहे थे जितना कि छोटे बालक! किन्तु ऐसा करने के लिए गुरुदेव ने अपने आप को आकर्षण का केन्द्र नहीं बनाया, वे तो बहुत विनम्र थे। किन्तु वे भीतर से इतने प्रसन्नचित्त थे कि अपनी उपस्थिति मात्र से ही लोगों में आनन्द का संचार कर सकते थे। इससे मैंने सीखा कि कितना सुन्दर प्रभाव एक हस्ते मुस्कराते व्यक्ति का पड़ता है।

सेना के एक रंगरूट की कहानी है जो सदा दुखी रहता था। वह सेना में नहीं रहना चाहता था और उसकी उदासी सदा उसके चेहरे पर दिखाई देती थी। अंत में उसका सारजेंट उसके पास आकर उससे बोला, "सैनिक, अच्छा होगा कि तुम खुश रहा करो क्योंकि किसी को यहाँ इस बात की कोई परवाह नहीं है कि तुम दुखी हो।" संसार ऐसा ही है। तुमने यह कहावत सुनी होगी कि, "यदि हंसोगे तो संसार तुम्हारे साथ हंसेगा किन्तु यदि रोओगे तो अकेले ही रोना पड़ेगा।" हम यह सोचते हैं कि यदि हम अपना दुखड़ा सुनाएँगे तो लोग हम पर ध्यान देंगे और हम अच्छा मेहसूस करेंगे। परन्तु सत्य इसके बिलकुल विपरीत है; जब हम दुखी होते हैं तो लोग हम से दूर रहने लगते हैं। पर हर कोई उस व्यक्ति को पसंद करता है जो प्रेम और मित्रतापूर्वक मिलता है और मुस्कुराता है।

अपनी कमियों को अपने दुख का कारण न बनाओ

हमें याद रखना चाहिये कि अपने चेहरे पर मुस्कुराहट लाएँ, चाहे हमें ऐसा करने के लिए अपने साथ जबरदस्ती ही क्यों न करनी पड़े। हमें किसी न किसी तरह इसकी शुरूआत करनी ही होगी! गुरुदेव प्राय: शेक्सपियर की यह उक्ति दोहराया करते थे, "यदि तुम्हारे अंदर सद गुण नहीं है तो उसे सोच कर अपना लो।" दूसरे शब्दों में, यदि तुम अपने अंदर किसी गुण को उत्पन्न करना चाहते हो तो ऐसे व्यवहार करो जैसे कि तुममें वह गुण विद्यमान है। एक समय ऐसा आएगा कि तुम्हारे भीतर वह गुण वास्तविकता बन जाएगा। चाहे मुस्कुराने की इच्छा न भी कर रही हो फिर भी मुस्कुराओ। तुम्हें स्वयं ही अच्छी अनुभूति होने लगेगी।*

---

* एक दुखी या मुस्कुराता चेहरा सीधा उन भावनाओं को उत्पन्न करता है जिनका ये भाव नेतृत्व करते हैं, एक नई धारणा के अनुसार कि भाव कैसे उत्पन्न होते हैं ... वैज्ञानिकों ने पाया कि सिर्फ व्यक्ति को अपना चेहरा किसी दिये गए भाव के अनुसार बनाने पर उससे सम्बन्धित भावनाए उभर आती हैं ... इस साक्ष्य का भार यह दृढ़ता से दिखाता है कि चेहरे के भाव मन पर प्रभाव डाल सकते हैं। न्यू यॉर्क टाइम्स, जुलाई १८, १९८९।

कुछ लोग सदा ही अपनी कमजोरियों के बारे में सोचते रहते हैं इसलिए उन्हें मुस्कुराना या प्रसन्न रहना कठिन लगता है। हम सबमें कुछ न कुछ कमियाँ या बुरी आदतें सुधारने के लिये होती हैं, किन्तु उनके विषय में इतना सोचते रहने की आवश्यकता नहीं है कि हम उसके कारण उदास हो जाएँ। इसके बजाए हमें उन कमियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा किस प्रकार करें? एक कागज लेकर उस पर वे सारी कमियाँ लिख डालो जिन्हें तुम दूर करना चाहते हो। जब कठिनाइयाँ और समस्याएँ हमारे मस्तिष्क में मंथन करती हैं तब हम उन्हें सुलझाने के लिए ठीक से सोच नहीं पाते और इस कारण वे इतनी भयंकर लगने लगती हैं जितनी कि वे वास्तव में होती नहीं। यदि आप कपड़े धोने की मशीन में धुलते कपड़ों को देखें जो घूम रहे हैं, तो आप नहीं बता पाएँगे कि वे कौन कौन से वस्त्र हैं। किन्तु यदि आप मशीन को रोककर एक एक करके कपड़ों को निकालना आरंभ कर दें तो आपको सब कपड़ों का पता लग जाएगा। ऐसा ही हमारे मस्तिष्क के साथ भी होता है। अपनी परेशानियों को अपने मस्तिष्क में चक्कर मत काटने दो, तुम्हें जो भौतिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक बात परेशान कर रही हो उसे एक कागज पर लिख लो भले ही वह बात किसी काम को लेकर हो या किसी व्यक्ति को लेकर। जब यह हो जाए तो हर सप्ताह उसमें से एक समस्या को चुन लो और उसे दूर करने का प्रयास करो। अपनी उस कमी को भूल जाओ और उसके ठीक विपरीत सकारात्मक विचार पर ध्यान केन्द्रित करो। उदाहरण के लिए यदि तुम्हें जल्दी क्रोध आ जाता है तो एक कार्ड पर "धैर्य" लिख लो, उस कार्ड को पूरे दिन अपने साथ रखो और अपनी चेतना पर उस सदगुण की छाप को गहरा करते जाओ। तुम देखोगे कि जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा तुम्हारे अचेतन मन से वह कमी दूर होती जाएगी और उसका स्थान वह सकारात्मक विचार लेता जाएगा।

खुशी की प्राप्ती का सरल मार्ग

प्रत्येक व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का सरल मार्ग खोजता है और गुरुदेव के पास भी खुशी की प्राप्ति का एक सरल मार्ग था: *बस खुश रहो*। हाँ, यह वास्तव में इतना ही सरल है। हमें अपने जीवन को स्वयं ही कठिन बनाने में बड़ी खुशी मिलती है और साथ ही आध्यात्मिक पथ के लिए भी हम कठिन

और समझ में न आने वाले तरीकों को ढूंढते रहते हैं। किन्तु ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है; गूढ़ सत्य वास्तव में बहुत सरल है।

एक बार एक डाक्टर किसी रोगी स्त्री की जांच कर रहा था किन्तु उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि उसे क्या कष्ट है। तो उन्होंने ने उससे पूछा, "क्या आप सुबह किसी कष्ट के साथ उठती हैं।" स्त्री वोली, "अब नहीं, उसे तो मैं तलाक दे चुकी हूँ।" हमें भी अपनी नकारात्मक सोच के साथ यही करना चाहिए — उसे अपनी चेतना से तलाक दे देना चाहिए।

अब्राहम लिंकन जानते थे कि यह कितना सरल है। वे कहते थे, "प्रायः लोग उतने ही प्रसन्न रहते हैं जितना कि वे रहने का मन बनाते हैं। होता यह है कि हम अपने दुखी होने के लिए परिस्थितियों को दोषी ठहराते हैं जबकि दोष हमारे मन में है।

मस्तिष्क कार के स्टियरिंग व्हील के समान होता है; जिस ओर विचार जाते हैं उसी ओर हमारा जीवन भी चलने लगता है। इसलिए हमें अपने विचारों पर नियंत्रण रखना सीखना चाहिए। समय-समय पर हमें अपने आप से प्रशन करना चाहिए कि, "मेरे मन में इस समय क्या चल रहा है?" यदि लगे कि तुम्हारा मस्तिष्क नकारात्मक, निराशावादी, हतोत्साहित करने वाले विचारों में लीन है तो तुरंत उनके स्थान पर दृढ़तापूर्वक सकारात्मक विचार ले आओ।

दैनिक जीवन में आनन्द को खोजना

गुरुदेव कहा करते थे कि जीवन के दो पहलू होते हैं जिनमें से सदा सकारात्मक पहलू पर ध्यान देना चाहिए। यदि आपके पास एक सुन्दर चित्र है पर उस चित्र को इस प्रकार टांग दें कि उसकी पीठ दिखाई देने लगे तो आपको चित्र के बजाए गत्ता ही दिखाई देगा। इसी प्रकार हम जीवन के प्रति क्या रुख अपनाते हैं इसका चुनाव स्वयं हमारे हाथ में है हमारे ऊपर किसी का दबाव नहीं है कि हम किस ओर देखें। "दो आदमी कारागार की सलाखों से झांक रहे थे। उनमें से एक कीचड़ को देख रहा था जब कि दूसरा सितारों को देख रहा था।" भगवान ने हमें छूट दे रखी है कि हम जीवन के 'सितारों' को देखें या कीचड़ को। यदि हम अपनी इस स्वतंत्रता का प्रयोग गलत एवं नकारात्मक विचारों या रवैये में उलझा लें तो दुखी रहेंगे। यदि हमें दुखी रहने की इच्छा है तो दुखी रहने के लिए हमें

बहाने ही बहाने मिल जाएँगे। इसी प्रकार यदि हम प्रसन्न रहना चाहें तो प्रसन्न रहने के लिए भी हमें कारण मिल ही जाएँगे।

हम प्रायः यह भूल जाते हैं कि दैनिक जीवन कितनी मौज मस्ती से भरा है! गुरु और संत जीवन को आम व्यक्ति के ढंग से हटकर देखते हैं। उन्हें हर जगह आनन्द और सुन्दरता दिखाई देती है — फूल पत्तियों में, वृक्षों में तथा अन्य लोगों में। यदि वे इस बारे में लोगों को कुछ बताना चाहें तो "तर्कशील" लोग उन्हें संदेह से देखते हैं! किन्तु हम जैसे, वे संत भी इसी धरती पर रह रहे हैं तो ऐसा क्यों कि हमें वह सब दिखाई नहीं देता जैसा कि उन्हें दिखता है? ऐसा इसलिए है क्योंकि हमने अपनी सोच को नकारात्मक पहलुओं से बांध रखा है।

जीवन की हर चीज़ एक मानसिक क्रिया मात्र है; और जो भी हम देखते हैं वह हमारी सोच का ही प्रतिबिम्ब होता है। जरा सोचकर देखिए, जब हमारे सामने कष्ट और समस्याएँ आती हैं तो हम कितने दुखी हो जाते हैं किन्तु जब हमें नींद आ जाती है तो इन समस्याओं और कष्टों का क्या होता है? सारी तकलीफें दूर हो जाती हैं और हम शान्त होकर आनन्दमगन हो जाते हैं। हमने सिर्फ अपनी चेतना बदल ली। नींद के दौरान हमारी चेतना शरीर से हटकर हमारे भीतर प्रवेश कर जाती है और आत्मा के भीतर ईश्वर की उपस्थिति के पास पहुँचकर मानवीय सीमाओं के दायरे से मुक्त हो जाती है।

हाँ, यह सच है कि जब हम जाग जाते हैं तो हमारा सामना फिर उन्हीं परिस्थितियों से होने लगता है। किन्तु हम अपने मन को इस प्रकार नियंत्रित कर सकते हैं कि जागते समय भी हम कष्ट तथा निराशाओं की स्थिति से मुक्त रहें। इस दिशा में पहला कदम है कि हम प्रसन्न रहने का प्रण कर लें। उसके बाद इस बात का ध्यान रखें कि हम अपनी प्रसन्नता को किसी शर्त के साथ न जोड़ें — अनजाने में भी यह नहीं सोचें कि ऐसा या वैसा हो जाए तभी प्रसन्न होंगे। अंततः, हमें हमेशा अपने विचारों पर निगरानी रखनी चाहिए ताकि नकारात्मक विचारों को हटाकर केवल अच्छी और ईश्वर संबंधी बातें सोचें।

दिव्य मुस्कान ईश्वर के सम्पर्क से आती है

खुशी की प्राप्ति के लिये यहीं मानसिक तरीका है, और प्रारम्भ में यह आवश्यक भी है। किन्तु इसकी भी अपनी सीमाएँ हैं क्योंकि आनन्द का वास्तविक स्रोत आत्मा में विद्यमान ईश्वर हैं, जिन्हें

केवल मन से नहीं जाना जा सकता। ईश्वर के बिना सकारात्मक विचार भी हमें लंबे समय तक प्रसन्न नहीं रख सकते। किन्तु ध्यान के दौरान जब हम ईश्वर से संपर्क करते हैं तो उनका आनन्द हमारे भीतर प्रवाहित होता है। नींद में अनजाने ही हम उस आनन्द तथा शान्ति का अनुभव करते हैं। किन्तु क्रियायोग और ध्यान के जरिए मनुष्य हर समय इस आनन्द का अनुभव कर सकता है। ऐसा करने से मुस्कान स्थाई हो जाती है और वह मुस्कान ऊपर से चिपकाई हुई नकली मुस्कान नहीं होती और न ही वह जबरदस्ती आशा करने से होती है।

अपने भीतर से वह मुस्कान लाने के लिए ध्यान करो। उसके पश्चात दिनभर मन को ईश्वर संबंधी विचारों से भरे रहो। जब हमें ईश्वर के आनन्द की प्राप्ति होती है तो हम सदा सच्चे हृदय से मुस्कुरा सकते हैं। तब हम वास्तव में "मुस्कान के धनी" बन जाते हैं और दूसरों को भी अपने भीतर छिपे खजाने से आनन्द दे सकते हैं। चाहे कुछ भी हमारे उपर जीवन या मृत्यु में आए यह दिव्य मुस्कान हम से कोई नहीं छीन सकता। ❑

"प्रभु! दुर्भाग्य के समय में मैंने आपकी आवज सुनी जो कह रही थी — 'मेरे संरक्षण का सूर्य तुम्हारे सब से उज्ज्वल तथा सबसे अंधकारमय क्षणों में समानता से चमकता है। विश्वास रखो और मुस्कुराओ। उदासी परमात्मतत्व की आनन्दमय प्रकृति के प्रति अपराध है। मुस्कुराहटों की पारदर्शिता के माध्यम से मेरे जीवन रूपान्तरक प्रकाश को प्रकट होने दो। मेरे पुत्र, तुम स्वयं प्रसन्न रह कर मुझे प्रसन्न करते हो।'"

— श्री श्री परमहंस योगानन्द,
"व्हिस्पर्स फ्रॉम इटर्निटी"

The Holy Science
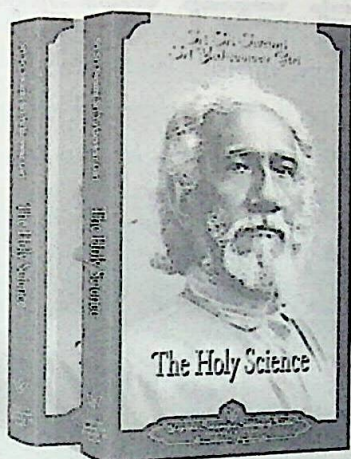
By Swami Sri Yukteswar Giri

Never in the East or West have I heard anyone else expound the Christian scriptures with so deep spiritual insight as Sri Yukteswar's....It was from my Hindu Guru, unknown to the roll call of Christian membership, that I learned to perceive the deathless essence of the Bible.

—Sri Sri Paramahansa Yogananda

This extraordinary treatise explores paralleled passages from the Bible and the Hindu scriptures to reveal the essential unity of all religions. Swami Sri Yukteswar, the revered guru of Sri Sri Paramahansa Yogananda, outlines the universal path that every human being must travel to enlightenment. He also explains the vast recurring cycles of civilization, affording a profound understanding of history and the ever-changing panorama of turbulent world events.

Paperback, 168 pages, Rs 40.00

See page 25 for ordering information

गोपाल और उसके ग्वाले भाई की कहानी

बँगाल के एक घने जँगल में बसे एक शाँत गांव के सीमाप्रान्त क्षेत्र में गोपाल और उसकी माँ एक छोटे से मिट्टी के झोपड़े में रहते थे। गोपाल जब गोद में ही था, तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। इसलिये गोपाल और उसकी माँ अकेले ही रहते थे। गांव के लोग गोपाल की माँ से बीज लेकर उनको बिरादरी (सामुदायिक) के खेतों में बो देते थे और फिर अपनी फसल के साथ-साथ उस फसल को भी तैयार कर देते थे। ऐसा करके गांव वालो को खुशी होती थी क्योंकि वे गोपाल के माता-पिता को बहुत अधिक सम्मान देते थे, जिन्होंने अपना जीवन पवित्र ग्रंथों में दिये गये प्राचीन आध्यात्मिक आदर्शों के अनुसार ढाला था।

अब गोपाल के स्कूल में जाने का समय आ गया था। गोपाल की माँ को इस बात का दुख तो था कि उसका बेटा अब सारे समय उसकी आँखों के सामने नहीं रहेगा लेकिन फिर भी वह गोपाल को वह शिक्षा दिलवाने के लिये कृतसंकल्प थी जो उसके पिता उसके लिये चाहते थे। एक शुभ मुहूर्त चुनकर उसकी माँ ने अपने बेटे को एक साफ धोती पहनाई और उदास हो कर उसे विदा किया। अपने छोटे से घर के दरवाजे पर खड़ी वह तब तक अपने बेटे को देखती रही जब तक वह उस रास्ते से जंगल में ओझल नहीं हो गया।

लेकिन जल्दी ही गोपाल अपने नन्हें पाँवों से जितना तेज भाग सकता था उतनी तेज भागता हुआ वापिस आ गया "माँ" वह रोते-रोते बोला, "मुझे डर लग रहा है! जंगल बहुत घना है और वहाँ बड़ी अजीब आवाज़ें सुनाई दे रही हैं; मैं स्कूल नहीं जा सकता।"

बेचारा गोपाल! अपनी माँ को यह सब बताते उसे बहुत शर्म आ रही थी लेकिन वह किसी भी तरह अकेले उन अजीबोगरीब परछाइयों एवं डरावनी आवाजों का सामना करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। उसकी माँ को समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे; वह गरीब विधवा स्कूल तक उसके साथ किसी साथी को भेजने का खर्चा नहीं उठा सकती थी। लेकिन अचानक ही उसे उत्तर मिल गया। भगवान कृष्ण निश्चय ही उसकी मदद करेंगे। भगवान की वह एक दैवी बालक के रूप में अराधना करती थी और अपने बच्चे में जिसे उसने भगवान का ही नाम दिया था, वह ईश्वर के स्वरूप की कल्पना करके ही उनकी सेवा शुश्रूषा एवं प्रेम किया करती थी।

गोपाल को अपने घुटने पर बैठाकर वह बोली: "डरने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है। मैं किसी को जानती हूँ जो तुम्हें जंगल से सुरक्षित तुम्हारे स्कूल तक ले जायेगा। मेरा एक और बेटा है जो जंगलों और मैदानों में गायों को चराता है। जो रास्ता तुम्हारे स्कूल को जाता है वह उसी रास्ते के पास ही अपने झुंड को चराता है। यदि तुम उसे स्कूल तक तुम्हें ले जाने के लिये बोलोगे तो उसे खुशी

होगी। उसे पुकारोः 'ग्वाले भैया, मेरी देखभाल करो।' वह अवश्य ही तुम्हारी आवाज सुनेंगे और सारे रास्ते तुम्हारे साथ चलेंगे। तब तो तुम्हें स्कूल जाने में खुशी होगी। होगी न?"

गोपाल ने रोना बंद कर दिया। "क्या यह सच है, माँ? क्या मेरा भाई वास्तव में मुझे जंगल पार कराने के लिये आएगा?"

"हाँ मेरे बच्चे यह उतना ही सच है जितना कि यह कि हमारा प्रेम स्वरूप भगवान हर क्षर्ण तुम्हारी देखभाल करता है।" "ठीक है तब तो मैं खुशी-खुशी स्कूल जाऊँगा।" वह बोला और प्रसन्नतापूर्वक जंगल की ओर निकल गया।

वह अधिक दूर नहीं गया था जब उसे घबराहट सी होने लगी। मार्ग पर कोई भी नहीं दिख रहा था और जंगल शान्त था, सिवाय पेड़ों की सरसराहट और उन जंगली जानवरो की आवाजों के, जो दिखायी नहीं दे रहे थे। गोपाल का दिल तेजी से धड़कने लगा। हर वृक्ष की परछाँई जीवित लग रही थी और गोपाल की घबरायी नजरों को तो वह जंगल के किसी भयानक जीव के समान लग रही थीं। वह जल्दी से माँ के पास वापिस जाने के लिये मुड़ा।

लेकिन तभी उसे माँ का परामर्श ध्यान आया। उसकी आश्वसित करने वाली आवाज। जब उसने उसे उसके ग्वाले भाई के बारे में बताया था।

"ओ। मेरे भैया!" वह चिल्लाया "ओ! मेरे ग्वाले भैया! मेरे साथ स्कूल आओ। मुझे जंगल से डर लगता है।"

उसने पत्तों की चरमराहट के बीच पैरों की आवाज सुनी। झाड़ियों के बीच से एक सुन्दर तरूण बालक ने पेड़ की टहनियों में से अपना सिर निकाला। उसके सिर पर सोने का बना एक मुकुट था जिसमें एक मोरपंख लगा हुआ था। उस लड़के ने गोपाल पर एक बहुत ही मैंत्रीपूर्ण मुस्कराहट बिखेरी और फिर झाड़ियों के पीछे से कूदकर उसने गोपाल का हाथ थाम लिया।

स्कूल तक सारे रास्ते वे नाचते खेलते गये। गोपाल अभी तक किसी भी ऐसे लड़के से नहीं मिला था जो इतना सुन्दर और शालीन और इतना सरल हृदय एवं दयालु हो। उसके व्यक्तित्व में इतनी शक्ति झलकती थी। फिर भी वह इतना सौम्य था कि गोपाल एकदम अपना सारा डर भूल गया। वास्तव में अपने नये साथी के साथ होने के अतिरिक्त वह सब कुछ भूल गया।

उस दिन से गोपाल बड़ी आतुरता से जंगल शुरू होने से पहले अपने ग्वाले भाई को पुकारने की प्रतीक्षा करने लगा। और प्रतिदिन वह अद्‌भुत साथी बच्चे के साथ आ जाता। वह अपनी बाँसुरी बजाता और दोनो जंगल के सारे रास्ते नाचते, हँसते, बड़े ही आनन्दपूर्वक समय बिताते। गोपाल कई बार सोचता कि यात्रा बड़ी छोटी है और उसका ग्वाला भाई उसके साथ कुछ और अधिक समय तक रुके, लेकिन उस बड़े लड़के को अपने झुंड की

देखभाल के लिये जाना पड़ता था।

और हाँ, गोपाल की माँ तो अपने बच्चे के उस अदभुत मित्र के बारे में सुनकर आभार से ओतप्रोत थी। मन ही मन उसने भगवान कृष्ण का धन्यवाद किया। उसको यह बहुत स्वाभाविक लगा कि भगवान कृष्ण उसके बच्चे की एक बड़े भाई के समान देखभाल करें।

एक दिन स्कूल के शिक्षक ने बताया की वह एक विवाह के भोज की तैयारी कर रहे हैं। हर विद्यार्थी ने घर जाकर अपने माता पिता को बताया और उन्होंने इस अवसर पर योगदान देने में अपना सम्मान समझा — भोजन, कपड़े, मिठाई, या फिर दुल्हा दुल्हन के पहनने के लिये रेशमी वस्त्र। जब गोपाल ने अपनी माँ से पूछा की वह अपने आदरणीय शिक्षक के लिये क्या ले जाये तो वह उदास हो गयी। उसके पास देने के लिये कुछ नहीं था। लेकिन जल्दी ही उसके चेहरे पर मुस्कान आ गयी क्योंकि उसे याद आया कि किस तरह लालकृष्ण ने सदा उनकी सहायता की है और वह हमेशा की तरह इस बार भी उनकी मदद करेगा।

"कल जंगल में स्कूल जाते समय अपने भाई से माँगो। वह जानते हैं कि एक गरीब विधवा के पास ऐसी दावत में देने के लिये कुछ नहीं है और वह निश्चय ही स्कूल मास्टर को देने के लिये तुम्हें कोई सुन्दर भेंट देंगे।

अगले दिन हर रोज की तरह ग्वाला आया और वह और गोपाल स्कूल के पूरे रास्ते खेलते गये। लेकिन जैसे ही ग्वाला जंगल में जाने के लिये वापिस मुड़ा, गोपाल को शादी की बात याद आ गयी।

"ओ मेरे भाई" वह बोला, "कृप्या मेरी मदद करो। मुझे आज स्कूल शिक्षक के लिये कुछ भेंट ले जानी है क्योंकि आज वह शादी की दावत दे रहे है और केवल एक मैं ही ऐसा होऊँगा जो उसे कोई भेंट नहीं दे पायेगा। क्या तुम मुझे ऐसा कुछ नहीं दोगे जो मैं ले जा सकूँ।"

उसका छोटा साथी आनन्दपूर्वक हँसा, "मेरे पास देने के लिये क्या है, मैं तो एक घुम्मकड़ ग्वाला हूँ।" गोपाल ने विनयपूर्वक उसकी तरफ देखा।

"शायद मेरे पास कुछ है — हो सकता है, तुम्हारा शिक्षक इसे स्वीकार कर ले। वह तरूण ग्वाला कुछ क्षण के लिये पेड़ों के पीछे गायब हुआ। जब वह आया तो वह ताजे दही का एक छोटा सा कटोरा लिये था। "गोपाल मेरे पास केवल इतना ही है। इसे अपने स्कूल के शिक्षक को यह बोलते हुए देना कि एक गरीब लड़का अधिक से अधिक इतना ही दे सकता है।"

गोपाल ने अपने मित्र का धन्यवाद किया और स्कूल की तरफ भागा। सब विद्यार्थी अपने शिक्षक के सामने एकत्रित थे और अपने माता पिता द्वारा ध्यानपूर्वक तैयार की गई भेंट दे रहे थे। दही का वह छोटा सा कटोरा उन बढ़िया कपड़ों के बंडल, स्वादिष्ट व्यंजन और पके फलों के टोकरों के सामने इतना तुच्छ लग रहा था कि किसी

ने उस गरीब लड़के गोपाल द्वारा दी जा रही भेंट की तरफ नजर भी नहीं डाली। गोपाल के गालों पर आँसू आ गये। वह इसे बहुत ही सुन्दर भेंट मान रहा था क्योंकि यह उसके प्रिय ग्वाले भाई ने दी थी।

स्कूल शिक्षक ने जो एक दयालु हृदय के इंसान थे। उसे रोता देखा तो अपनी तरफ बुलाया। उन्होंने प्रशंसा के भाव से कटोरा लिया और दही को एक बड़े बर्तन में डाला ताकि वह कटोरे को गरीब विधवा को वापिस कर दे — यह सोचते हुए कि वह जितना अच्छा दे सकती थी उसने दिया।

लेकिन जैसे ही उन्होंने मुस्कुराते हुये गोपाल को कटोरा वापिस किया, एक विचित्र घटना घटी। वह खाली कटोरा दुबारा दही से भर गया। हैरान स्कूल शिक्षक ने जल्दी से अपने बड़े बर्तन में दही डाला लेकिन वह जितनी जल्दी उस दही को बर्तन में डालते, ग्वाले का मिट्टी का बर्तन किसी अनंत स्रोत से पुनः भर जाता।

स्कूल के हैरान विद्यार्थी चीख उठे। "यह किसकी भेंट है? इतना अदभुत कटोरा तुम्हें कहाँ से मिला?" गोपाल भी उतना ही हैरान था और पहली बार उसे पता चला कि उसका जंगल का साथी वास्तव में कौन था। बहुत अचम्भित हो कर वह बोला "मेरे ग्वाले भाइ ने मुझे यह दिया।"

स्कूल शिक्षक खड़े हो गए। "यह ग्वाला कौन है?"

ओह! मैं हर रोज जब भी उसे पुकारता हूँ वह आता है और जंगल के रास्ते में मेरे साथ चलता है। वह एक सोने का मुकुट पहने रखता है और उसमें मोर का एक पंख लगा रहता है और वह बाँसुरी पर बड़े मधुर गीत बजाकर मुझे मुग्ध कर देता है।" मुझे इस ग्वाले से मिलाने ले चलो।" स्कूल शिक्षक की आवाज उत्तेजना से काँप रही थी। लेकिन उनके चेहरे के भाव दर्शा रहे थे कि उन्हें विश्वास था कि वह भगवान जो वर्षों के ग्रन्थ अध्ययन के बावजूद उनसे दूर रहे वह निश्चित तौर पर गाँव के इस छोकरे को दिखाई नहीं दे सकते। शिक्षक और गोपाल मैदान के पार जाने लगे। जंगल के किनारे पर पहुँच कर गोपाल ने अपने सामान्य तरीके से पुकारा, "मेरे भाई आओ और मेरे साथ खेलो।"

और स्कूल शिक्षक के चेहरे पर "मैं जानता था" का एक दंभपूर्ण भाव उभर आया। इसे देखकर गोपाल और अधिक जोर देकर चिल्लाया। "मेरे भाई ग्वाले यदि तुम नहीं आओगे वे सब हँसेंगे और बोलेंगे की मैं झूठा हूँ।"

पत्ते हल्के से सरसराये और हवा का एक झोंका मानो कहीं दूर से एक आवाज लाया, "मेरे नन्हें भाई मैं उनके पास जल्दी से आ जाता हूँ जो मुझे बच्चे के समान विश्वास से बुलाते हैं, लेकिन मैं तुम्हारे संशयवादी शिक्षक को अपना चेहरा नहीं दिखा सकता। उसे अपने हृदय के अंदर झांकने दो और वह जान जायेगा कि क्यों वह अपनी आंखों से मुझे नहीं देख पाता।" ☐

See page 25 for ordering information

संन्यास-जीवन की यात्रा

श्री श्री परमहंस योगानन्द ने लिखा है, "एक संन्यासी के रूप में मेरा जीवन ईश्वर की असंरक्षित सेवा एवं उनके संदेश से प्रत्येक हृदय में आध्यात्मिक जागरूकता लाने के लिए समर्पित हैं।" उन्होंने योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया/सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप सन्यासी सम्प्रदायों की स्थापना "उन लोगों के लिए की है जो संन्यास के पथ पर जाने के इच्छुक हैं जिसका अनुगमन मैंने किया है। यह उनके लिए है जो अपने सांसारिक जीवन में पूर्ण त्याग के आकांक्षी हैं और जो ध्यान तथा उत्तरदायित्व निर्वाह के योग के आदर्शों के द्वारा ईश्वर की खोज और उसकी सेवा करना चाहते हैं।"

सभी गुणों में मानव की सबसे गहरी और मुख्य प्रेरणा, किसी चीज को प्राप्त करने की आकांक्षा अगर रही है, तो वो है, उपयुक्त प्रेम, समझ, आनन्द, परिपूर्णता — स्वयं सत्य ही।

इसकी उपस्थिति का ज्ञान यदि न भी हो; फिर भी यह उपस्थित रहती है — एक ललक जो निरन्तर किसी अच्छाई या उच्च आदर्शों की अभिलाषा में — आत्मा को एक इच्छा से दूसरी इच्छा में ले जाते हुए, जब तक अन्त में उसको यह नहीं समझ में आ जाता कि जो पूर्णता वो प्राप्त करना चाहता है वह उसे केवल ईश्वर में ही प्राप्त हो सकती है। यही गहन खोज का आरंभ है, यही वह आध्यात्मिक यात्रा है जो प्रत्येक आत्मा को उसी एक ईश्वर के पास वापस ले जाएगी जो उसका सच्चा स्रोत तथा अंतिम लक्ष्य है।

कोई व्यक्ति किसी भी भूमिका में हो आन्तरिक रूप से अपना जीवन ईश्वर के प्रति समर्पित कर सकता है। तब वह क्या है जो उस व्यक्ति को सांसारिक आकर्षण त्यागने एवं ईश्वर की खोज करने के लिए प्रेरित करता है? यह केवल बुद्धि का निर्णय नहीं है या तर्कपूर्ण समझदारी नहीं है कि व्यक्ति अपने जीवन से क्या चाहता है? यह व्यक्ति की आत्मा की तीव्र व आन्तरिक इच्छा होती है जो मौन परन्तु आग्रही है। प्रत्येक व्यक्ति अपने मन की गहराइयों में ईश्वर की अदम्य पुकार सुनता है: *"मुझे अपना हृदय दो।"** *"तुम्हारे पास जो कुछ भी है जाकर उसे बेच दो ··· और मेरा अनुसरण करो।"*†

जो त्यागी पूरे मन से ईश्वर प्राप्ति की इच्छा से संन्यास का पथ चुनता है वही सोद्देश्य ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट जीवन में परम आनन्द प्राप्त करता है। ऊँचे लक्ष्य के लिए किए जाने वाले कार्य में, अपने चरित्र को सुदृढ़ प्रगति व परिपक्वता में और सबसे बढ़कर दैवी संतुष्टि में जो ईश्वर के प्रति जीवन के पूर्ण समर्पण से असीम आनन्द प्राप्त होता है।

> *जो लोग और कुछ नहीं मात्र ईश्वर को ही पाने के इच्छुक हैं वे ही पूर्ण त्याग का पथ प्रसन्नतापूर्वक अपनाते हैं। ईश्वर स्वयं को उनके लिए अभिव्यक्त करता है जो त्याग के पथ के अनुकूल जीवन जीते हैं: "ईश्वर मेरा जीवन है। ईश्वर मेरा प्रेम है। ईश्वर वह मंदिर है जो निरन्तर मेरे हृदय को पूजा के लिए पुकारते हैं। ईश्वर मेरा लक्ष्य हैं।"*
>
> — श्री श्री परमहंस योगानन्द

संन्यासियों की जीवनशैली में एक सुन्दर सादगी होती है। भौतिक इच्छाओं और माया-मोह से दूर होने से संन्यासी और संन्यासिनी वर्ग अपना पूरा समय ईश्वर को अर्पित करने के लिए स्वतंत्र है। वे ईश्वर को अपनी आत्मा का और अधिक अनवरत एवं अन्तरंग साथी बनाने का प्रयास करते हैं।

* भगवद्गीता XVIII:65.

† मैथ्यू 19:21.

संन्यासी के जीवन में प्रत्येक कार्य ईश्वर के साथ गहन संबंध विकसित करने की दिशा में निर्देशित होता है। उनके पूरे दिन के क्रियाकलापों का केन्द्र तथा लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति के अलावा और कुछ नहीं। संन्यासी का अपने साथियों के साथ लक्ष्य की एकता उसके स्वयं के प्रयास को महान बल प्रदान करती है। सब का एक साथ मिलकर किया गया आध्यात्मिक सत्प्रयास प्रत्येक का शक्तिवर्धन चुपचाप करता है। इस प्रकार एक साथ की गई भक्ति एवं समर्पण से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दैवी शक्ति प्रवाहित होती है।

जबकि संन्यासी समुदाय आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत है, परन्तु प्रत्येक संन्यासी व संन्यासिनी का जीवन एकाकी होता है। "मोनेस्टिक" शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द "मोनस" से हुई है जिसका अर्थ है एकाकी। संन्यासी सबके सानिध्य तथा दूसरों के उदाहरण से लाभ उठाता है, परन्तु अपनी आत्मा की सन्तुष्टि केवल ईश्वर में ही प्राप्त करता है। कार्यरत रहते हुए भी संन्यासी और संन्यासिनी अपनी हृदयगत आन्तरिक शान्ति बनाए रखते हैं। ईश्वर के प्रति आन्तरिक सचेतता की अनुभूति करते हैं। इस आन्तरिक शान्ति में "अनवरत प्रार्थना" संभव होती है — ईश्वर के समक्ष निरंतर बने रहने एवं अपनी चेतना की पूर्णताहेतु ईश्वर की सूक्ष्म प्रेरणा ग्रहण करने के लिए आन्तरिक शान्ति आवश्यक होती है।

अन्त में, त्याग का पथ स्वयं के पूर्ण समर्पण का आह्वान करता है। ईश्वर को जानने के लिए आवश्यक, आन्तरिक रूपान्तरण तभी हो सकता है जब उनके प्रति पूर्ण समर्पण किया जाए। व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह सत्य के प्रकाश में अपने को देख सके, जिससे कि वह अपनी कमियों को पहचान सके और साथ में ईश्वर की शक्ति में आस्था बनाए रखे — उस आत्मिक पूर्णता को प्राप्त करे जिसके लिए वह प्रयत्नशील है। एक आध्यात्मिक योद्धा के समान अपना सर्वस्व देने को तत्पर रहना चाहिये जिससे वह अपनी दुर्बलताओं से बिना विचलित हुए युद्ध कर सके जिन्होंने उसकी चेतना में अपनी पकड़ मजबूत कर रखी है। जैसे-जैसे अहं के प्रतिरक्षक धीरे-धीरे पराजित होते हैं — और दूसरों को जैसे आप उनकी आवश्यकताओं के लिए सहानुभूति में सहायता करते हैं — तब आत्मा की सार्वभौमिकता अपने के अभिव्यक्त करती है। तब चेतना का ईश्वर एवं उसकी सृष्टि के प्रति प्रेम का अधिक विस्तार होता है।

संन्यासी, समाज का त्याग ईश्वर को पूर्णरूप से प्राप्त करने के प्रयास के उद्देश्य से करता है, इसप्रकार वह सच्चे अर्थों में अपने सहयोगियों के साथ और अधिक आत्मीयता से जुड़ रहा है। ईश्वर के प्रति अपनी आस्था से, सबके लिए अपनी प्रार्थनाओं से, और अपने जीवन में गहनतर होने वाली आध्यात्मिकता के माध्यम से वह चुपचाप शान्ति तथा दैवी प्रेम की किरणें बिखेरता है जिससे मानव परिवार का, पूर्ण रूप से कल्याण होता है। ❑

New Colour Photos

Bhagavan Krishna
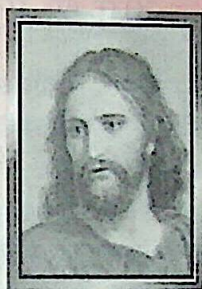
Jesus Christ

Mahavatar Babaji

Lahiri Mahasaya

Paramahansa Yogananda

Swami Sri Yukteswar

Size: 12" x 15" **Rs 100.00 per photo**
Size: 20" x 26" **Rs 300.00 per photo**

See page 25 for ordering information

समर्पण का जीवन

द्वारा श्री मृणालिनी माता

(कुछ समय पूर्व एस. आर. एफ. के संन्यासी एवं संन्यासिनियों के लिए दिए गए सत्संग की टिप्पणी से उद्धृत जिसे सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप की वाइस-प्रेसिडेंट ने दिया था)

प्रिय आत्मन, पिछले कुछ वर्षों में हमारे दिव्य गुरु की योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया/सेल्फ-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप को इतनी तीव्रता से बढ़ते हुए देखा है, उसके कार्य का विस्तार एक नए युग में प्रवेश कर रहा है। हम अपने गुरुदेव के शब्दों को बार-बार याद करते हैं जो उन्होंने अनेक वर्ष पूर्व कहे थे जब हम संन्यासी के रूप में अपना जीवन समर्पित करने आए थे: "जब मैं अपने शरीर का त्याग करूँगा तब यह संस्था मेरा शरीर होगी, तुम सब लोग मेरे हाथ-पाँव एवं वाणी होगे।" समर्पण का यह जीवन कितना पवित्र अवसर है और कितना मुक्तिप्रदायक अनुभव है। प्रत्येक, जो हृदय से इसे अपनाता है वह गुरुदेव के अस्तित्व के प्रकाशमान परमाणु के समान हो जाता है। हर कोई एक आवश्यक योगदान संस्था को करता है, जिसके द्वारा गुरुदेव की संस्था निरंतर उनके दैवी प्रेम की भावना में दूसरों तक पहुँच सके।

संसार आध्यात्मिक गुणों एवं नैतिकता को बिलकुल खो चुका है। जो लोग संन्यास का पथ चुनते हैं वे अपनी आत्मा की इच्छानुसार तथा सामान्य भौतिक प्रतिमान से ऊपर उठकर जीवन जीते हैं। यद्यपि तुलनात्मक रूप से कुछ लोग ही संन्यास लेते हैं फिर भी ऐसे लोग दूसरों के समक्ष उच्चतर मूल्यों को प्रस्तुत करते हुए अनुशासित जीवन जीते हैं। जो केवल ईश्वर को जीवन अर्पित करते हैं। उसकी पवित्रता से कुछ अलग व विशेष अनुभव करते हैं। सादगी के व्रत का पालन, आज्ञाकारिता, शुचिता, निष्ठा, ध्यान में सतत लगन और विनम्रतापूर्वक प्रगति करने का प्रयास जैसे गुण साधक में आश्चर्यजनक बदलाव लाते हैं। यहाँ तक कि उसके शरीर का भी आध्यात्मीकरण हो जाता है। दूसरे लोग इस विषय में कुछ कह नहीं पाते हैं परन्तु वे इस साधक के प्रकाशचक्र को अनुभव करते हैं जो उन्हें उन्नत करता है और ईश्वर के बारे में बताता है। विनम्र साधक

इसका दिखावा नहीं करता है: यह भी संभव है कि इसके विषय में वह जानता ही न हो।

अपने को आध्यात्मिक पथ पर समर्पित करने से उच्च कोई कार्य नहीं, नाहीं इससे महान कोई सफलता है जिसे हासिल किया जा सकता हो और न ही अनन्त की दृष्टि में इससे अधिक कोई यश प्राप्त कर सकता है। इस पथ पर जो सफल है, जो अपनी आत्मा से सेवा करता है, ईश्वर व गुरु के सामञ्जस्य के साथ चुपचाप अनजाने ही संसार के हज़ारों लोगों को परिवर्तित कर देता है। एक दिन ईश्वर के समक्ष वह पीछे मुड़के देखकर कह सकता है, "अरे! जगन्माता और गुरुदेव ने इस तुच्छ जीवन के साथ क्या कर किया।" इन अनेक वर्षों में गुरुदेव के कार्य की प्रगति इसी कारण है कि उनके आध्यात्मिक परिवार में ऐसे लोग हैं — संन्यासी समुदाय के साथ-साथ अनेक गृहस्थ भक्त भी हैं — जिन्होंने गुरुजी की शिक्षाओं और आदर्शों के अनुकूल जीवन्त उदाहरण बनने के लिए जीवन अर्पित कर दिया।

गुरुदेव योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया/सेल्फ़-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप का जीवन और हृदय हैं। उनके आदर्श, उनकी चेतना को हम लोग अपने आश्रम के दैनिक जीवन में अपने अन्दर उतारते हैं। गुरुदेव के संन्यासी और संन्यासिनी अपने आचरण, विचार एवं संपूर्ण चेतना में यही सीखते हैं कि भले ही उनके कर्त्तव्य उन्हें कहीं भी क्यों न ले जाएँ परन्तु उन्हें सदा याद रहे: "मैंने स्वयं को एक आदर्श के लिए समर्पित कर दिया है, वही मापदण्ड जो मेरे गुरु में है: सर्वप्रथम ईश्वर, सदैव ईश्वर, केवलमात्र ईश्वर।" वह भक्त जिसका जीवन सचमुच गुरुजी के आदर्शों के लिए समर्पित है; उसको गुरुजी का आशीर्वाद सदैव प्राप्त हैं, जिसको वे सबकी सेवा के लिए माध्यम बना कर प्रयुक्त कर सकते हैं। उसके जीवन के द्वारा वे ईश्वर प्रेम को, समझदारी व पोषण को, जीसस की क्षमा को, श्रीकृष्ण के ज्ञान को, व अन्य दैवी गुणों को जिन्हें उन्होंने अत्यन्त सुन्दरता व प्रसन्नता से अपने निजी जीवन में अभिव्यक्त किया है व्यक्त करवा सकते हैं। हम सब लोग अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं कि हमें उनके द्वारा स्थापित किए गए आश्रमों में सुअवसर उपलब्ध हैं न केवल अपनी मुक्ति के लिए साधना करके, परन्तु ऐसा प्रयास करके उस दैवी व्यवस्था को चिरस्थायी बनाने के लिए अग्रसर होते हैं जिसे गुरुदेव ने सब की मुक्ति एवं मानवता की प्रोन्नति के लिए प्रस्तुत किया है। ❑

"Mejda"
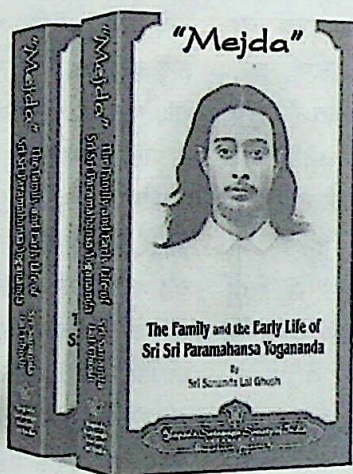
The Family and the Early Life of Sri Sri Paramahansa Yogananda

By

Sri Sananda Lal Ghosh

This delightful biography paints a vivid portrait of Sri Sri Paramahansa Yogananda's early years, as seen from the author's unique perspective as the younger brother. The portrayal of other family members and friends, and stories of Sri Yogananda's youthful spiritual adventures add to the appeal of this intimate account. Also includes excerpts from family diaries, and letters by Paramahansaji to his brother.

Paperback 346 Pages, 93 photos, Rs 90.00

See page 25 for ordering information

श्री आनन्दमाता

(1915–2005)

की स्मृति में

शनिवार, दिनांक 5 फरवरी को हमारी प्यारी आनन्दमाता जी ने अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर के शान्तिपूर्वक इस संसार से पार प्रकाश और बंधनमुक्त आनन्द के लोक में प्रवेश किया वे हमारी प्यारी संघमाता श्री श्री दया माताजी कि बहन और गुरुजी के पुराने और घनिष्ट अनुयायियों में से एक थीं।

आनन्दमाता जी कि 1931 में परमहंस योगानन्दजी से भेंट हुई थी और 1933 में उन्होंने अपने जीवन को प्रभु की खोज तथा गुरुजी के कार्यों के लिए समर्पित कर दिया था। परमहंसजी ने उन्हें योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया/सेल्फ–लियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के एक सदस्य के रूप में मनोनित किया था। उन्होंने सत्तर सालों से भी अधिक समय तक बिना थके प्रेमपूर्वक वाई. एस. एस./एस. आर. एफ. की महान जिम्मेदारियों को दोनों भारत तथा पश्चिम में अपनी सेवाओं से निभाया। वह गुरुजी के विश्वव्यापी कार्य की मजबूत स्तम्भ थी। पूरे विश्व में फैले गुरुजी के सम्पूर्ण आध्यात्मिक परिवार में उनकी भारी कमी महसूस होगी। एस. आर. एफ. के सभी आश्रमों से सन्यासी एक स्मृति सभा के लिये एकत्रित हुए जिसकी अध्यक्षता श्री श्री दया माता जी ने ११ फरवरी को मदर सेण्टर में की; और विश्वभर में फैले हमारे मंदिर, केन्द्र और समूह के सदस्यों ने उनके सम्मान में विशेष प्रार्थना सभा और ध्यान का आयोजन किया।

योगदा सत्संग के वार्षिक प्रकाशन का आगामी अंक आनन्दमाता को श्रद्धांजलि के रूप में प्रकाशित होगा।

Tsunami Relief
and
Rehabilitation

In the wake of the devastatation caused by tsunami in South India in late December 2004, which left a trail of unimaginable destruction, death, and suffering, Yogoda Satsanga Society of India participated in relief operations forthwith.

Providing utensils, blankets, clothes and fishing nets, repair of boats and engines, construction of toilet blocks, etc. were undertaken in several villages along the coast line of Andhra Pradesh, Tamil Nadu and Kerala such as Kalpakkam, Pichhavaram, Venkateshapuram, Krishnapatnam, Panayur, Pillumedu off Pichhavaram and Kollam-Vallicau.

Yogoda Satsanga Society of India is recognized as a charitable Society and therefore all donations made to it for Tsunami Relief will qualify for Income-Tax deduction under 80G of the Income-Tax Act, 1961.

All remittances are to be made and cheques/drafts drawn in favour of "Yogoda Satsanga Society of India" payable at Ranchi.

Please send the donations to the following address:

General Secretary, Yogoda Satsanga Society of India
Paramahansa Yogananda Path
Ranchi, Jharkhand, 834001
Fax No (0651) 2462728

Swami Shantananda Giri

Joint General Secretary

योगदा सत्संग समाचार

जन्मोत्सव 2005

राँची आश्रम, जनवरी 2–5, 2005

राँची में गुरुदेव के जन्मोत्सव पर आए दो भक्तों के, विशेषकर ६ घण्टे के ध्यान और जगन्नाथपुर में हुई नारायण सेवा में हुए उनकें अनुभवों को हम आपके साथ बाँटना चाहेंगे।

पहले भक्त

2 जनवरी 2005 को, दोपहर 1 बजे से संध्या 7 बजे तक, 6 घंटे के ध्यान का आयोजन था। ध्यान का आरंभ
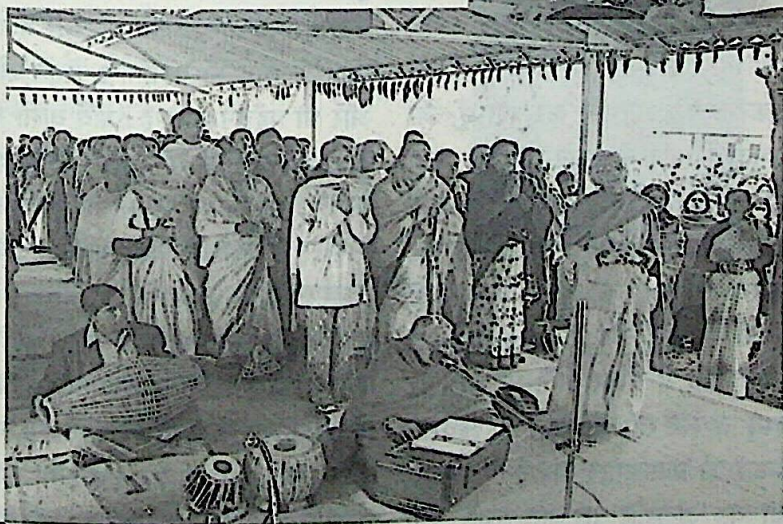
राँची आश्रम में जनवरी 5, 2005 को गुरु पूजा

ईश्वर एवं गुरुओं की वन्दना से हुआ, इसके पश्चात कॉस्मिक चैन्ट्स तथा ध्यान हुआ। प्रत्येक घंटे, भक्ति संगीत गाने तथा अपने दिव्य गुरु की आवाज़ टेप पर सुनने से ईश्वर तथा गुरु के प्रति हमारा सम्पर्क गहन होता गया। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे मन में जो अनेक प्रश्न घुमड़ रहे हैं, गुरुदेव उनका उत्तर दे रहे हैं। मुझे यह मार्गदर्शन मिला कि किस प्रकार ध्यान और क्रियाशीलता में संतुलन बनाए रखा जाए। किस प्रकार शरीर पर नियंत्रण किया जाए जिससे ध्यान के समय मैं स्थिर होकर बैठ सकूँ तथा सजग रह सकूँ।

ध्यान की समाप्ति पर मुझे लगा कि मेरी चेतना पर पड़े हुए अज्ञानता के कई आवरण उठाए जा रहे हैं और मैं ईश्वर तथा गुरु के प्रति पहले से अधिक निकटता की अनुभूति कर रहा हूँ, जो अभूतपूर्व थी। मेरे मन में एक मात्र अपने गुरु का विचार ही बचा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व में उन्हीं की चेतना व्याप्त है। मैं किसी दूसरी दुनिया में पहुच गया था। ध्यान कक्ष से बाहर आने पर मुझे हर वस्तु नई लग रही थी मेरा चित्त ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशमान था। दैवी उल्लास की यह अनुभूति पूरी रात मुझमें बनी रही।

दूसरे भक्त

मैं 26 दिसंबर 2004 को राँची आश्रम पहुँचा था। मैं पहली बार जुलाई 1995 में वहाँ गया था यह मेरा दूसरी बार वहाँ जाना हुआ। वहाँ मुझे पता चला कि गुरुजी के जन्मोत्सव के सिलसिले में, 3 जनवरी 2005 को, जगन्नाथपुर में गरीबों को कपड़ा व भोजन वितरित किया जाएगा। मैंने निस्संकोंच इस सेवा में भाग लेने के लिये अपना नाम दे दिया।

निर्धारित दिन संन्यासियों, भक्तों एवं स्वयंसेवकों का एक बड़ा दल 10:30 बजे सुबह जगन्नाथपुर के लिये चल दिया। जब हम लोग वाई. एस. एस. विद्यालय के मैदान में पहुँचे तब यह देखकर हैरानी हुई कि वहाँ पहले से ही लगभग 3-4 हज़ार ग्रामवासी एकत्रित थे। मुझे बताया गया कि शीघ्र ही वहाँ 1-2 हज़ार लोग और भी पहुँचने वाले है। गाँव वालो को तीन अलग स्थानों पर समूहों में बाँट दिया गया था और प्रत्येक स्थान पर स्वयंसेवक नियुक्त थे। अच्छी व्यवस्था से भोजन वितरण में और आसानी हुई।

यद्यपि भोजन सादा था (खिचड़ी और सब्जी) परन्तु ग्रामवासी उसे प्राप्त करके आनन्दित थे मानो ऐसा खाना उन्हें फिर नहीं मिलेगा। जब हम लोग खाना परोस रहे थे, मैंने उन लोगों की आँखों में सच्ची प्रशंसा का भाव अनुभव किया।

इसके पश्चात संन्यासियों ने स्वयंसेवकों को कपड़ा/कम्बल बाँटने से संबंधित संक्षिप्त निर्देश दिए। जब मैं कम्बल वितरण के स्थान पर पहुँचा तो वहाँ पहले से ही हज़ारों लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। उन ग्रामीणों को परिवार के सदस्यों के अनुसार कम्बल प्राप्त करने के टोकन पहले से ही दे दिए गए थे। उसके अनुरूप ही कम्बल वितरित किए गए।

मैंने पहली बार इतने बड़े स्तर पर होने वाले 'भंडारे' व 'वस्त्र वितरण' सेवा में भाग लिया था। मैं भाग्यशाली था कि मुझे गुरुदेव के जन्मोत्सव पर वाई. एस. एस. द्वारा आयोजित सेवा में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। यह अत्यन्त उत्साह प्रदायक तथा आत्मिक प्रसन्नता देने वाला अनुभव था कि मुझे गरीबों की सेवा का अवसर मिला।

वाई. एस. एस. न केवल धार्मिक बल्कि परोपकारी संस्था के रूप में भी सक्रिय है। यह गरीबों तथा जरूरतमंदों को निःशुल्क चिकित्सा सेवा प्रदान करती है तथा नेत्र चिकित्सा शिविर आयोजित करती है। गुरुजी को दिवंगत हुए लगभग 54 वर्ष हो चुके हैं परन्तु उनके आदर्श एवं शिक्षाएँ आज भी वाई. एस. एस./एस. आर. एफ. संन्यासियों तथा भक्तों के लिए महान प्रेरणा का स्रोत हैं।

गुरुजी ने कहा है, "जीवन का मुख्य उद्देश्य सेवा होना चाहिए। इसके अभाव में ईश्वर द्वारा प्रदत्त तुम्हारी प्रज्ञा अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचती है। सेवा करते समय जब तुम अपने सीमित आत्म को भूलोगे तभी ईश्वर के विराट असीमित स्वरूप का अनुभव करोगे।" मेरी यही इच्छा है कि गुरुदेव ने जो दिव्य परिवार बनाया है उसके माध्यम से मानव तथा मानवता की सेवा व्यवस्थित रूप से निरंतर जारी रहे।

पश्चिमी बंगाल में जन्मोत्सव

प्रत्येक वर्ष, क्रिस्मस के दिन भर के ध्यान के पश्चात अदृश्य हाथों द्वारा प्रदत्त जिस आनन्द का प्रभाव लम्बे समय तक व्याप्त दिखाई देता रहा है — वाई. एस.

दक्षिणेश्वर, कोलकाता में 5 जनवरी 2005 को जन्मोत्सव पर प्रभातफेरी।

एस. के दक्षिणेश्वर आश्रम में गुरुदेव के जन्मोत्सव के आने की प्रसन्नता चारों ओर छा जाती है। इस वर्ष दक्षिणेश्वर आश्रम में 2-6 जनवरी 2005 को गुरुजी का 112वाँ जन्मोत्सव मनाया गया।

स्वामी स्मरणानन्दजी के "गाड टाक्स विद अर्जुन" पर आधारित प्रवचन ने भक्तों को गहन प्रेरणा प्रदान की। शक्ति संचार व्यायाम, हांग-सा प्रविधि तथा ओ३म तकनीक के मूल्यांकन की कक्षाओं में प्रचुर संख्या में भक्तों ने भाग लिया। 4 जनवरी को 30 भक्तों को क्रियायोग की दीक्षा दी गई।

5 जनवरी को परमपरागत प्रभातफेरी का कार्यक्रम हुआ जो दक्षिणेश्वर के मुख्य मार्गों पर निकाली गई जिसमें लगभग 350 भक्तों ने भाग लिया। इसके बाद सत्संग हुआ और भजन गाए गए। 5000 से अधिक भक्तों एवं आमंत्रित लोगों को प्रसाद दिया गया। संध्या के ध्यान के पश्चात भक्तों का रात्रि का कार्यक्रम हुआ।

6 जनवरी को स्वामी स्मरणानन्दजी ने "गाड टाक्स विद अर्जुन" पर आधारित अपने प्रवचन का समापन किया। इसके पश्चात प्रश्नोत्तर कार्यक्रम में भक्तों की शंकाओं का समाधान किया गया।

9 जनवरी को श्रीरामपुर में जन्मोत्सव मनाया गया। दिन भर के कार्यक्रम का प्रारंभ प्रभातफेरी से हुआ जिसमें 250 भक्तों ने भाग लिया तत्पश्चात श्रीरामपुर राजबाड़ी में सत्संग और भजन हुआ। लगभग 700 भक्तों एवं
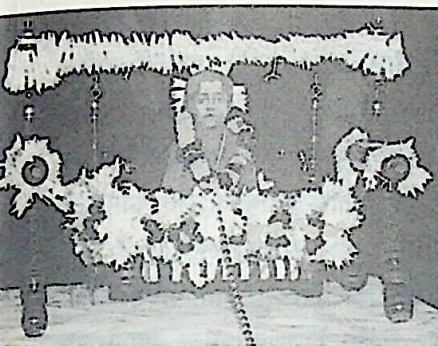
पालना में रखा गुरुदेव का चित्र

सन्यासियों द्वारा केक काटना

आमंत्रित जनों ने प्रसाद ग्रहण किया। प्रसाद वितरण के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित हुआ। संध्या समय सार्वजनिक कार्यक्रम हुआ।

गड़पार केन्द्र ने 16 जनवरी को जन्मोत्सव मनाया। प्रभातफेरी में लगभग 400 भक्तों ने भाग लिया। उत्तरी कोलकाता के कुछ महत्त्वपूर्ण मार्गों से गुज़रने के कारण प्रभातफेरी पर्याप्त प्रभावशाली रही। इस दिन सत्संग हुआ, ध्यान किया गया; सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत हुए तथा गरीबों को कपड़ा बाँटा गया।

तेलारी केन्द्र ने 22-23 जनवरी को जन्मोत्सव मनाया। 22 जनवरी को क्विज़-प्रतियोगिता हुई। 23 जनवरी को 5000 से अधिक भक्तों तथा आमंत्रित लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। इन सभी कार्यक्रमों की अध्यक्षता स्वामी अमरानन्द ने की।

परमहंस योगानन्द साधनालय, इगतपुरी में जन्मोत्सव 2005, मनाया गया

भारत के विभिन्न भागों से लगभग 530 भक्त जन्मोत्सव के सौभाग्यशाली कार्यक्रम में भाग लेने मैत्री-भाव के संसर्ग में इगतपुरी साधनालय में आए। संपूर्ण परिसर के आसपास का वातावरण आध्यात्मिक रूप से उत्साहपूर्ण था। साधनालय के सामने की शानदार पहाड़ी "श्रीयुक्तेश्वर गिरी," मनोकामना कुँआँ एवं ध्यान के लिये बने एकान्त कुँज भक्तों को ध्यान के प्रयासों को बढ़ाने की प्रेरणा दे रहे थे।

पाँच जनवरी को गुरुदेव के जन्म के समय पर एक विशेष धर्मानुष्ठान किया गया। जन्मदिन पर दिया उनका प्रवचन — टेप चलाया गया। जन्मदिन बधाई-

गान "हैप्पी बर्थ डे टू गुरुदेव" के बाद प्यारा सा केक काटा गया और सभी को दिया गया। भक्तों ने बारी बारी से उस सुसज्जित डोर को आनन्दपूर्वक खींचा जो "नन्हें मुकुन्द" के पालने से लगी हुई थी जिसमें उनका छह वर्ष की आयु का चित्र लगा हुआ था।

ब्रह्मचारी सदानन्द ने गुरुदेव की अमूल्य शक्ति संचार व्यायाम एवं ध्यान की प्रविधियों की कक्षा ली, और नियमित अभ्यास पर विशेष बल दिया।

ब्रह्मचारी निगमानन्द ने "भक्तिः सर्व कुंजी" पर अपनी वार्ता में गुरुदेव का संदर्भ देते हुए बताया कि वे कहा करते थे कि भक्त वह है जो अपने जीवन के सभी उतार-चढ़ाव व सभी कामकाज के बीच प्रभु से जुड़ा रहता है और चुम्बक की ओर सुई की भान्ति उनकी ओर खिंचा रहता है। भक्त अपनी सब पुष्टियाँ एकमात्र उनसे ही प्राप्त करता है। सच्चा भक्त अपनी पहचान ईश्वर में खोकर उसी में लीन हो जाता है जिस तरह कि नदी अपनी पहचान समुद्र में खो देती है। ब्रह्मचारीजी ने ज़ोर दिया कि गुरु

ईगतपुरी का विवरण

गुरुदेव के जन्मोत्सव के अवसर पर योगदा सत्संग साधनालय में वाई. एस. एस. को सच्ची परंपराओं के अनुरूप कार्यक्रम का संचालन किया गया। समारोह का त्रुटिहीन आयोजन एवं निष्पादन, गुरुदेव के जन्मदिवस के केक को काटने का अभिनव एवं कल्पनात्मक ढंग, मल्टीमीडिया का सफल प्रयोग एवं समस्त परिवेश की भव्यता — यह सब आयोजक भक्तों की लगन एवं समर्पण की भावना को दर्शा रहे थे। व्यक्तिगत रूप से, मैं अपनी साधना में एक शुष्क दौर से गुज़र रहा था। तथापि, इस प्रोग्राम ने मेरी आध्यात्मिक बैटरियों को पुनः आवेशित (चार्ज) कर दिया, और मेरे नये साल के संकल्प 'पूरी तरह से तैयार हो कर उतर जाना' को और दृढ़ कर दिया। स्वामी देवानन्दजी द्वारा संचालित भजनों के कार्यक्रम में भजन गाते हुए मेरी आँखों से आँसू मुक्त रूप से बह रहे थे। मेरी इस भावना को कि मैं 'बूढ़ा हो गया हूँ' को बहुत धक्का लगा जब मैंने स्वामी शान्तानन्दजी को 12 वर्ष के बालक की तरह ऊर्जा संचालक व्यायाम करते देखा। यह प्रेरणा संक्रामक थी और हम सबको गुरुदेव के आशीर्वाद की प्राप्ति हुई। आप सबको इस अति आनन्ददायक एवं लाभप्रद अनुभव के लिये मेरा धन्यवाद।

— पी. एस. पी., मुम्बई

के उपदेशों को श्रद्धापूर्वक पालन करने से ही परा भक्ति "ईश्वर के प्रति अटल व बिना शर्त भक्ति" हृदय में प्रकट होती है।

स्वामी देवानन्द ने मनः शक्ति के विकास पर अपनी वार्ता में समझाया कि किस तरह व्यक्ति ध्यान में सचेत रूप से अपने आपको शिथिल कर सकता है, व किस तरह वह अपने जीवन के लक्ष्यों की मानसिक अंतिम-रूपरेखा बना सकता है और बताया कि सभी शक्तियों के स्रोत — ईश्वर के साथ प्रेममय संबंधों को गहराने का महत्व क्या है।

निर्णय लेने के लिये व्यावहारिक परामर्श देते हुए स्वामी शान्तानन्द ने भक्तों को सलाह दी कि जब ध्यान में दिव्य परमप्रिय की शान्ति, आनन्द व ज्ञान का अनुभव हो रहा हो, उस समय वे अपने जीवन की समस्याओं को अपनी हृदय-वेदी पर रखें। जैसे ही अंतरात्मा/अंतर्ज्ञान की शान्त वाणी उन्हें सहजता व निश्चितता कां अनुभव दे, उन्हें अपने समस्या समाधान की कार्य योजना पर अमल करने के लिये आगे बढ़ जाना चाहिये। स्वामीजी ने आग्रह किया कि अपनी अंतरात्मा को समर्थ बनाएँ तो अंतर्ज्ञान बढ़ेगा। शरीर व मन को शान्त करें तथा परम शान्ति में निर्णय लें।

स्वामी शान्तानन्द ने अनुरोध किया कि ध्यान की गहराई बढ़ाने के लिये भक्त को सचेत प्रयास करने चाहिए ताकि वह शान्ति, दिव्य प्रेम, आनन्द व ज्ञान के दिव्य गुणों से तादात्म्य स्थापित कर सकें। कूटस्थ पर या हृदय में गुरु की उपस्थिति में ध्यान करना, गुरुदेव के पाठों व आत्मकथा को पढ़ना, इत्यादि कुछ ऐसे प्रयास हैं जो हमें गुरु के निकट ले जाते हैं। वास्तव में ये प्रयास गुरु व ईश्वर को प्रेम करना ही हैं। सभी को प्रेम करने से हम ईश्वर के नित्य विस्तारित होते प्रेम का अनुभव करेंगे।

अपने समापन सत्संग में, स्वामी शान्तानन्दजी ने याद दिलाया कि आध्यात्मिक प्रगति के सही संकेत ध्यान में प्रकाश व ध्वनियों का अनुभव आना नहीं बल्कि शान्ति, आनन्द, समझ की गहराई बढ़ना, करुणा, समत्व भाव, दृढ़तर इच्छा शक्ति, सद्व्यवहार एवं दिव्यता के लिये निरंतर बढ़ता जाता प्रेम है।

मुम्बई के मेज़बान भक्तों ने स्वयंसेवकों के साथ अत्यधिक प्रेमपूर्ण तरीके से सावधानी व दिलचस्पी के साथ शिविरार्थियों के लिये आरामदायक प्रवास सुनिश्चित किया ताकि वे साधनालय में साधना-यात्रा का अधिकतम उपयोग कर सकें।

जन्मोत्सव समारोह मदुरई, जनवरी 5-9, 2005

मदुरई के जन्मोत्सव समारोह में जो 591 भक्तजनों ने भाग लिया था, उनमें से एक ने योगदा सत्संग ध्यान मंडली, मदुरई की प्रशंसा निम्न वाक्यों के साथ किया:

"हमारे प्रिय गुरुदेव ने कहा था, कि एक साथ ध्यान करने से समूह के हर सदस्य के आत्मज्ञान का स्तर सामूहिक चुम्बकीय आकर्षण के स्पंदन के अदृश्य आदान प्रदान नियम के द्वारा विकसित हो जाता है। योगदा सत्संग ध्यान मंडली, मदुरई, हमारे गुरुदेव के इतने सारे भक्तजनों को एक समूह में पिरोकर एक ही छत के नीचे सामूहिक रूप से ध्यान करवाने में काफी मददगार साबित हुई है। हमें यही, अपना वास्तविक परिवार प्रतीत होता है। जैसे कि हम अपने घर में गुरुदेव के साथ हैं। अपने संतों एवं दूसरे अन्य भक्तगणों के पाँच दिनों के संगति में हमें अनोखा आनन्द मिला है, जिसे अभी भी हमलोग सुखद यादों के रूप में याद करते हैं। हमारे ठहरने का प्रबंध अति उत्तम एवं आरामदायक था।"

साधकों के जलूस के समय (सर्वप्रथम) स्वामी अमरानन्द गिरि द्वारा आरती

यह शब्द, संभवतः उन सभी भक्तों की भावनाओं को व्यक्त करते हैं, जिन्होंने मदुरई के समारोह में भाग लिया था।

योगदा सत्संग संस्था के भक्तजनों ने इस कार्यक्रम को बड़े ही सुन्दर ढंग से आयोजित किया। प्रत्येक पहलुओं की विस्तार एवं कुशल योजना, उनके कार्यों में प्रत्यक्ष विद्यमान थी, चाहे वह आगन्तुकों का स्वागत हो, या बैठक व्यवस्था, रसोईघर, कैसेट्स, पुस्तक विक्रय आदि। मुख्य स्थल "मास्टर महल" जिसमें बैठने की काफी जगह थी, पर्याप्त हवा एवं प्रकाश की वजह से सत्संग एवं ध्यान करने के लिए उपयुक्त जगह सिद्ध हुई। भोजनालय सहूलियत के लिये दूसरी मंजिल पर था। सन्यासियों एवं मुख्य सेवकों के लिए आठ कमरों को पूरी तरह स्वच्छ रखा गया था। योगदा सत्संग ध्यान मंडली के सदस्यों के आध्यात्मिक भाईचारे की भावना प्रेरणादायक थी। कोईम्बटूर के भक्तों ने संपूर्ण पुस्तक विक्रय पटल का संचालन किया। डीन्डीगुल, चेन्नई, मैसूर, बेल्गौम, सालेम, बैंगलोर और हुबली के भक्तजनों ने रसोई, स्वागत-व्यवस्था, और क्रिया-पंजीयन कार्यों के संचालन में मदद किया।

जनवरी 4 के सार्वजनिक सभा में
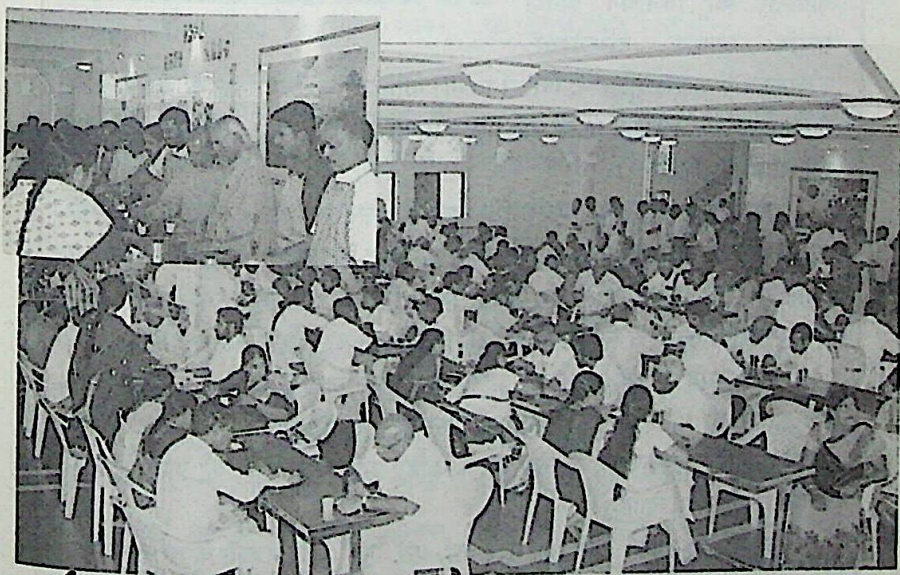
मास्टर महल, भोजनालय में प्रसाद वितरण

लगभग 550 व्यक्ति उपस्थित थे। मुख्य अतिथि, डॉ. करुणाकरण उपकुलपति, गाँधी ग्राम विश्वविद्यालय, डीन्डीगुल, स्वामी शुद्धानन्द गिरि और एक योगदा सत्संग संस्था के भक्तजन के वक्तव्यों को बड़े आदर के साथ श्रोताओं ने सुना। करीबन 21 व्यक्तियों ने 'गुरुजी की शिक्षाओं' के लिए नामांकन करवाये और

मदुरै का विवरण

हिन्दू समाचार पत्र से समाचार (जूनवरी 7, 2005) 'धर्म के नियमों को अंतर्ग्रहण करो'। यहाँ पर श्री परमहंस योगानन्द द्वारा स्थापित योगदा सत्संग सोसाइटी की 'आदर्श जीवन' पुस्तकमाला एवं आध्यात्मिक दैनंदिनी के तमिल भाषान्तर का विमोचन योगदा सत्संग आश्रम, दक्षिणेश्वर, कोलकाता के स्वामी शुद्धानन्द गिरि ने किया। गाँधीग्राम ग्रामीण संस्था के कुलपति श्री टी. करुणाकरण ने इसकी पहली प्रति यहाँ सोमवार को वाई. एस. एस. द्वारा आयोजित एक समारोह में प्राप्त की।
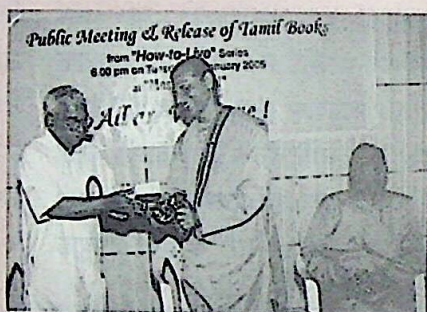
इस अवसर पर, अपने भाषण में स्वामी शुद्धानन्द गिरि ने कहा कि इन पुस्तकों का विमोचन उनके गुरुदेव श्री श्री परमहंस योगानन्द के जन्मोत्सव पर विशेष रूप से किया गया। उन्होंने लोगों से यह आग्रह किया कि एक शान्तिपूर्ण और संतोषजनक जीवन व्यतीत करने के लिए उन्हें धर्म के नियमों का अन्तर्ग्रहण करना चाहिए।

मानवजाति के अधिकांश कष्ट मानसिक अथवा शारीरिक होते हैं। उन्होंने कहा कि पागल की भाँति भौतिक संपदा को प्राप्त करने के प्रयासों को त्याग कर, हमको अपने आंतरिक स्वरूप का विकास करना चाहिए और सदा ईश्वर की प्राप्ति के लिये प्रयास करते रहना चाहिए।

स्वामी अमरानन्द गिरि और मदुरै वाई. एस. एस. ध्यान मंडली के वरीय सदस्य, वी. आनन्दवल्ली, ने भी इस सभा को संबोधित किया।

कुल 20,000 रु. तक के गुरुजी की पुस्तकें बिकीं।

जनवरी 5, हमलोगों के लिए सबसे पवित्र दिन, हमारे गुरुदेव का जन्मदिवस। प्रातः काल, गुरुजी के एक वृहत तसवीर को, मालाओं एवं रंगीन फूलों द्वारा खुबसूरती पूर्वक सजाकर, "जय गुरु...." एवं "श्री श्री परमहंस योगानन्दजी की जय...." भक्तिपूर्ण भजन गाकर शोभायात्रा करते हुए, मदुरई मंडली परिसर से "मास्टर महल" तक ले जाई गई। "प्रभातफेरी" में भाग लेकर गुरुजी के आशीर्वाद को पाना, बहुतों के लिए पहला अवसर था और वहाँ स्वतः भक्तियुक्त ऐसा परिवेश जणित हुआ कि भक्तगण अपने अश्रुओं को रोक न सकें। दक्षिण भारत के पारम्परिक संगीत "नदास्वरम" और "ताविल" ने समारोह में अतिरिक्त रंग घोल दिया। गुरुजी को स्वयं अपने साथ ले जाने सा प्रतीत हो रहा था। उनकी उपस्थिति अत्यंत शक्तिशाली थी।

स्वामी शुद्धानन्द, स्वामी अमरानन्द और ब्रह्मचारी पवित्रानन्द ने सत्संग, प्रक्रिया (तकनीक) पुनर्वालोकन कक्षा, ध्यान योग, भजन और क्रिया योग दीक्षा समारोह का परिचालन किया। तमिल भाषा में संचालित तकनीक पुनर्वालोकन कक्षा से बहुतों को विशेषकर नए विद्यार्थियों को काफी सहायता मिली। सन्यासियों ने भक्तगणों के संदेहों को दूर करने हेतु अनेक परामर्श अधिवेशनों की बैठक की, जिसका भरपूर लाभ भक्तगणों ने उठाया।

एक भक्तगण के निम्नांकित शब्द, मदुरई के जन्मोत्सव समारोह को उपयुक्त रूप से बयाँ करता है।

"यह पाँच दिनों का कार्यक्रम हमें अपने आप को सांसारिक क्रियाक्रमों से दूर रखते हुए, 'मास्टर महल' के शान्तिपूर्ण तथा स्वच्छ वातावरण को पूर्ण रूप से आत्मसाथ करने और अपने ह्रदय एवं मस्तिष्क को सिर्फ, केवल, भगवान एवं गुरु के विचारों में व्यतीत करने में सहायतार्थ सिद्ध हुआ।"

समापन समारोह के दौरान, यह प्रत्यक्ष रूप से दर्शित था कि कितनी कठिनाइयों से भक्तगण "मास्टर महल" में जणित आध्यात्मिक चुंबक से अपने आप को अलग कर रहे थे। वे अपने ह्रदय और आत्मा को भगवान और गुरु के शहद से भरकर, गुरुदेव का आश्वासन लेकर, अनिच्छापूर्वक प्रस्थान किए, जो हर एक को प्रदान किए गए समारोह स्मारक "खजूर की पत्री" पर छपा था "अज्ञातपूर्वक मैं तुम्हारे साथ चलुँगा और अदृश्य हाथों से तुम्हारी रक्षा करूँगा।" ❑

"Give Me Thy Heart"

This loving request of Bhagavan Krishna to Arjuna represents the desire of God for each of us, His children. Having given us the freedom of choice, He cannot have the full love and devotion of our hearts until we willingly and unreservedly choose to give our hearts to Him.

All who would know true love, joy, and fulfillment must learn this divine secret, for all comes from Him, and without Him there is no happiness. This holds true for the householder as well as for the sannyasi.

Any young men who have taken up the study and practice of the Yogoda Satsanga teachings of Sri Sri Paramahansa Yogananda, and have come to feel that their whole life is meant only for following and serving our Gurudeva and his work, may wish to deeply consider this call of God to give Him their hearts, and ask in deep meditation what will most fully enable them to do so. Those who do not feel drawn in this life to enter the grihastha ashram, who are free from all worldly and family commitments or obligations, who are in sound health, and who hold the supreme desire to know God, may wish to consider the life of sannyas in the Yogoda Satsanga Sannyas Order.

If you feel deeply drawn to this life, and fulfill the above conditions, we invite you to write your thoughts and feelings to us at the Yogoda Satsanga Sakha Math, Paramahansa Yogananda Path, Ranchi, Jharkhand 834001.